गुरु भक्ति

प्रकाशक
धर्मोदय साहित्य प्रकाशन
स्लीमनाबाद जिला-कटनी (म.प्र.)
फोन नं. 07624-266104, 98936-31671

अर्थ सौजन्य

आदिश जैन के प्रथम जन्मोत्सव पर प्रकाशित

आभा जीतेश जैन

जे. के. स्टोन एक्सपोर्ट

वरेठ रोड, जैन मंदिर के पास, गंजबसौदा (म.प्र.)

मो. 09425148753

- **लागत मूल्य** : 8/- रुपये (पुन: प्रकाशन हेतु)
- **प्राप्ति स्थान** : **धर्मोदय साहित्य प्रकाशन**
  स्लीमनाबाद जिला-कटनी (म. प्र.)
  फोन नं. 07624-266104,
  98936-31671
- **मुद्रक** मुद्रक - अनिल मुद्रणालय, फोन - 2403551

अनुक्रम

1.	प्रार्थना-मिलता है सच्चा.....	5
2.	पंचपरमेष्ठी स्तवन	6
3.	श्री सिद्ध भक्ति	8
4.	श्री श्रुत भक्ति	9
5.	श्री आचार्य भक्ति	10
6.	समाधि भाषा	12
7.	सर्वोदय दोहावली	13
8.	पूर्णोदय दोहावली	15
9.	सूर्योदय दोहावली	17
10.	दोहा दोहन (मंगल भावना)	19
11.	नीति अमृत	21
12.	पूज्य वंदना	23
13.	शिक्षाप्रद दोहावली	25
14.	अध्यात्म दोहावली	27
15.	मंगल भावना	29
16.	निजानुभव गीतिका	31

17.	निरंजन गीतिका	37
18.	भावना गीतिका	40
19.	संत साधु बनके	42
20.	श्रमण गीतिका	43
21.	परीषहजय गीतिका	45
22.	सुनीति गीतिका	50
23.	गोमटेश अष्टक	54
24.	शीतलनाथ स्तवन	56
25.	पार्श्वनाथ स्तवन	57
26.	इष्टभावना हमारे कष्ट मिट जाये...	58
27.	श्री पञ्चमहागुरु भक्ति	59
28.	श्री योगी भक्ति	61
29.	श्री शान्ति भक्ति	63
30.	आत्मकीर्तन (हूँ स्वतंत्र निश्चल)	66
31.	गुरु अर्चना	67
32.	श्रावक प्रतिक्रमण	69
33.	समाधि भावना	80

प्रार्थना

मिलता है सच्चा सुख केवल, भगवान् तुम्हारे चरणों में।
यह विनती है पल-पल क्षण-क्षण, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में॥

मिलता है सच्चा ...

चाहे बैरी कुल संसार बने, चाहे जीवन मेरा भार बने।
चाहे मौत गले का हार बने, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में॥

मिलता है सच्चा ...

चाहे अग्नि में मुझे जलना पड़े, चाहे काँटों पे मुझे चलना पड़े,
चाहे छोड़ के देश निकलना पड़े, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में॥

मिलता है सच्चा ...

जिह्वा पर तेरा नाम रहे, तेरा ध्यान सुबह और शाम रहे।
तेरी याद तो आठों याम रहे, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में॥

मिलता है सच्चा ...

चाहे संकट ने मुझे घेरा हो, चाहे चारों ओर अंधेरा हो।
पर मन नहीं मेरा डगमग हो, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में॥

मिलता है सच्चा ...

निशदिन मैं दीप जलाता हूँ, फिर भी मन में क्यों अंधेरा है।
प्रभु ज्ञानदीप हमको दे दो,रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में॥

मिलता है सच्चा ...

प्रभु भव सिंधु के खिवैया तुम, इस भव से पार लगा दो तुम।
स्वीकार करो आरति मेरी, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में॥
मिलता है सच्चा सुख केवल, भगवान् तुम्हारे चरणों में।

पञ्च परमेष्ठी स्तवन

अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्व साधु सुख दाता,
परमेष्ठी पंच सुखदाता ॥
इन्द्र, नरेन्द्र यक्ष सुर किन्नर पंडित बुधजन सारे,
भवतम भंजन शीश नमावत रक्षक तुम ही हमारे,
जब शुभ मन से ध्यावे, तब शुभ आशीष पावे,
हे सद्बुद्धि प्रदाता ॥
भव दुःख बाधा हरो हमारी तुम्हे नमावत माथा,
जय हे जय हे जय हे जय जय जय जय हे,
परमेष्ठी पंच सुखदाता ॥1 ॥
चारों गति में भ्रमत फिरे हैं कष्ट अनेक उठाय,
ज्ञान नयन जब खुले हमारे तब तुम दर्शन पाये,
सुख की आश लगाये, हम सब तुम ढिग आये,
जहाँ मिले सुखसाता ॥
नाथ तुम्हारे दर्शन से तो मुक्ति पथ मिल जाता,
जय हे जय हे जय हे जय जय जय जय हे,
परमेष्ठी पंच सुखदाता ॥2 ॥
अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्व साधु सुख दाता ॥
परमेष्ठी पंच सुखदाता ॥

तरणि विद्यासागर गुरु, तारो मुझे ऋषीश।
करुणा कर करुणा करो, वहीं से दो आशीष ॥

यही प्रार्थना आप से अनुनय से कर जोर।
पल-पल, पग-पग बढ़ चले मोक्ष महल की ओर ॥

फूल-फलों से ज्यों लदे, घनी छाँव के वृक्ष।
शरणागत को शरण दे, श्रमणों के अध्यक्ष ॥

बाहर श्रीफल कठिन ज्यों, भीतर से नवनीत।
जिन शासक आचार्य को, विनमूँ नमूँ विनीत ॥

थकता रुकता कब कहाँ, ध्रुव में नदी प्रवाह।
आह वाह परवाह बिन, चलें सूरि शिव राह ॥

संयम सौरभ साधना, जिनको करे प्रणाम।
त्याग तपस्या तीर्थ का, विद्यासागर नाम ॥

जिनके उर में कल कल बहती, शुद्ध चेतना की धारा।
समतामय सम्यक्त्व मणी से, जिनने निज को शृंगारा ॥

वचनों के मोती बिखराते, अमर रहो चिंतन नागर।
मेरे उर में आन विराजो, गुरुवर श्री विद्यासागर ॥

सिद्ध भक्ति

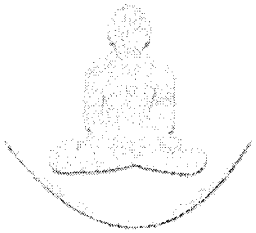

नमोऽस्तु पौर्वाह्णिक/अपराह्णिक श्रीआचार्य-वन्दना-क्रियायां, पूर्वाचार्यानुक्रमेण, सकलकर्मक्षयार्थं,भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री सिद्धभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(9 बार णमोकार)

सम्मत्त-णाण-दंसण-वीरिय-सुहुमं तहेव अवगहणं।
अगुरुलहु-मव्वावाहं,अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं॥ 1॥

तव सिद्धे, णय-सिद्धे, संजम-सिद्धे, चरित्त-सिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य, सिद्धे सिरसा णमंसामि॥ 2॥

इच्छामि भंत्ते। सिद्ध-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्म -णाण-सम्म-दंसण-सम्मचरित्त-जुत्ताणं, अट्ठविह-कम्म-विप्प मुक्काणं-अट्ठगुण-संपण्णाणं उड्ढलोए मत्थयम्मि पइट्ठियाणं तव-सिद्धाणं, णय-सिद्धाणं, संजम-सिद्धाणं,चरित्र-सिद्धाणं अतीदा-णागद-वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं-सव्वसिद्धाणं णिच्चकालं अञ्चेमि पुज्जेमि वंदामि, णमंसामि-दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइ-गमणं समाहिमरणं जिणगुण संपत्ति होउमज्झं।

श्रुत भक्ति

नमोऽस्तु पौर्वाह्णिक/अपराह्णिक श्री आचार्य-वन्दना-क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण, सकलकर्मक्षयार्थं,भाव-पूजा-वन्दना स्तव-समेतं श्री श्रुत भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(9 बार णमोकार)

कोटिशतं द्वादश चैव कोट्यो, लक्षाण्य-शीतिस्-त्रयऽधिकानि चैव।
पञ्चाश-दष्टौ च सहस्र-संख्या मेतच्-छुतं पञ्च-पदं नमामि॥ 1॥

अरहंत-भासियत्थं-गणहर-देवेहिं गंथियं सम्मं
पणमामि-भत्ति-जुत्तो,सुद-णाण महोवहिं सिरसा॥ 2॥

इच्छामि भंत्ते ! सुदभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं-अंगोवंग-पइण्णए-पाहुडय-परियम्मि-सुत्त पढमाणि-ओग-पुव्वगय-चूलिया चेव-सुत्तत्थय-थुइ-धम्म-कहाइयं सया णिच्च-कालं अञ्चेमि पुज्जेमि वंदामि णमंसामि-दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो, सुगइ-गमणं समाहि-मरणं जिणगुण संपत्ति होउ-मज्झं।

आचार्य भक्ति

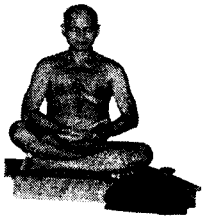

नमोऽस्तु पौर्वाह्णिक/अपराह्णिक श्री आचार्य-वन्दना- क्रियायां, पूर्वाचार्यानुक्रमेण, सकलकर्मक्षयार्थं,भाव-पूजा-वन्दना स्तव-समेतं श्री आचार्य भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(9 बार णमोकार)

श्रुत जलधि पारगेभ्यः,स्व-पर-मत विभावना पटुमतिभ्यः।
सुचरित-तपोनिधिभ्यो, नमो गुरुभ्यो-गुण-गुरुभ्यः॥ 1॥
छत्तीस-गुण-समग्गे, पञ्च-विहाचार-करण-संदरिसे।
सिस्सा-णुग्गह-कुसले, धम्मा-इरिये सदा वंदे॥ 2॥
गुरु-भत्ति-संजमेण य, तरंति संसार-सायरं घोरम्।
छिण्णंति अट्ठकम्मं, जम्मण-मरणं ण पावेंति॥ 3॥
ये नित्यं-व्रत-मंत्र होम-निरता, ध्यानाग्नि-होत्राकुलाः।
षट्-कर्माभि-रतास्-तपो-धनधनाः, साधु-क्रियाः साधवः॥4॥
शील-प्रावरणा-गुण-प्रहरणाश्-चन्द्रार्क -तेजोऽधिकाः।
मोक्ष-द्वार-कपाट-पाटन-भटाः, प्रीणंतु मां साधवः॥ 5॥
गुरवः पान्तु नो नित्यं ज्ञान-दर्शन-नायकाः।
चारित्रार्णव गम्भीराः मोक्ष मार्गोपदेशकः॥ 6॥

इच्छामि भन्ते! आइरिय भत्ति काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्त-जुत्ताणं, पञ्चविहाचाराणं, आइरियाणं आयारादि-सुद-णाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, ति-रयण-गुण-पालण-रयाणं सव्वसाहूणं, णिच्च-कालं, अञ्चेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं-समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

(नोट- सुबह 18 बार एवं संध्या 36 बार णमोकार मंत्र पढ़े)

★

समाधि भाषा

इतना तो कर दो स्वामी, जब प्राण तन से निकले।
होवे समाधि पूरी, जब प्राण तन से निकले॥
माता-पितादि जितने, हैं ये कुटुम्ब सारे [2]
उनसे ममत्व छूटे, जब प्राण तन से निकले॥

इतना तो .....

बैरी बहुत से मेरे, होवेंगे इस जगत में [2]
उनसे क्षमा करा लूँ, जब प्राण तन से निकले॥

इतना तो .....

परिग्रह का जाल मुझपर, फैला बहुत है स्वामी[2]
उनसे ममत्व छूटे,जब प्राण तन से निकले॥

इतना तो .....

दुष्कर्म दुःख दिखावे या रोग मुझको घेरे[2]
प्रभु का न ध्यान छूटे, जब प्राण तन से निकले॥

इतना तो .....

इच्छा क्षुधा तृषा की, होवे जो उस घड़ी में[2]
उसका भी त्याग कर दूँ, जब प्राण तन से निकले॥

इतना तो .....

हे नाथ अर्ज करता, विनती पे ध्यान दीजे[2]
होवे सफल मनोरथ, जब प्राण तन से निकले॥

इतना तो .....

सर्वोदय दोहावली

पूज्यपाद गुरुपाद में, प्रणाम हो सौभाग्य।
पाप ताप संताप घट, और बढ़े वैराग्य॥1॥

मत डर मत डर मरण से, मरण मोक्ष सोपान।
मत डर मत डर चरण से, चरण मोक्ष सुख पान॥2॥

यथा दुग्ध में घृत तथा, रहता तिल में तेल।
तन में शिव है, ज्ञात हो अनादि का है मेल॥3॥

ऐसा आता भाव है, मन में बारम्बार।
पर दुःख को यदि न मिटा, सकता जीवन भार॥4॥

पानी भरते देव हैं, वैभव होता दास।
मृग-मृगेन्द्र मिल बैठते, देख दया का वास॥5॥

तत्त्व दृष्टि तज बुध नहीं, जाते जड़ की ओर।
सौरभ तज मल पर दिखा, भ्रमर-भ्रमित कब और॥6॥

सब में वह न योग्यता, मिले न सबको मोक्ष।
बीज सीझते सब कहाँ, जैसे ठर्रा मोठ॥7॥

किस किस को रवि देखता, पूछे जग के लोग।
जब-जब देखूँ देखता, रवि तो मेरी ओर॥8॥

क्या था क्या हूँ क्या बनूँ, रे मन अब तो सोच।
वरना मरना वरण कर, बार-बार अफसोस॥9॥

पूर्णोदय दोहावली

उच्च-कुलों में जन्म ले, नदी निम्नगा होय।
शांति, पतित को भी मिले, भाव बड़ों का होय ॥1॥
एक साथ सब कर्म का उदय कभी न होय।
बूँद-बूँद कर बरसते, घन, वरना सब खोय ॥2॥
आत्मामृत तज विषय में, रमता क्यों यह लोक।
खून चूसती दुग्ध तज, गौ-थन में क्यों जोंक ॥3॥
जठरानल अनुसार हो, भोजन का परिणाम।
भावों के अनुसार ही, कर्म बन्ध-फल-काम ॥4॥
शील नशीले द्रव्य के, सेवन से नश जाय।
संत-शास्त्र-संगति करे, और शील कस जाय ॥5॥
एक तरफ से मित्रता, सही नहीं वह मित्र।
अनल पवन का मित्र ना, पवन अनल का मित्र ॥6॥
विगत अनागत आज का, हो सकता श्रद्धान।
शुद्धातम का ध्यान तो, घर में कभी न मान ॥7॥
सन्तों के आगमन से, सुख का रहे न पार।
सन्तों का जब गमन हो, लगता जगत असार ॥8॥
नीर नीर है क्षीर ना, क्षीर क्षीर ना नीर।
चीर चीर है जीव ना, जीव जीव ना चीर ॥9॥

सब कुछ लखते पर नहीं, प्रभु में हास-विलास।
दर्पण रोया कब हँसा, कैसा यह संन्यास ॥10॥
आस्था का बस विषय है शिव-पथ सदा अमूर्त।
वायु-यान पथ कब दिखा, शेष सभी पथ मूर्त ॥11॥
उपादान की योग्यता, निमित्त की भी छाप।
स्फटिक मणि में लालिमा, गुलाब बिना न आप ॥12॥
खून ज्ञान, नाखून से, खून रहित नाखून।
चेतन का संधान तन, तन चेतन से न्यून ॥13॥
आत्म बोध घर में तनक, रागादिक से पूर।
कम प्रकाश अति धूम्र ले, जलता अरे कपूर ॥14॥
भटकी अटकी कब नदी, लौटी कब अध बीच।
रे मन तू क्यों भटकता, अटका क्यों अघकीच ॥15॥
गौमाता के दुग्धसम, भारत का साहित्य।
शेष देश के क्या कहें, कहने में लालित्य ॥16॥
अनल सलिल हो विष सुधा, व्याल माल बन जाये।
दया मूर्ति के दरस से, क्या का क्या बन जाये ॥17॥
पूर्ण पुण्य का बन्ध हो, पाप मूल मिट जात।
दलदल पल में सब घुले, भारी हो बरसात ॥18॥

★

बान्धव रिपु को सम गिनो, संतों की यह बात।
फूल चुभन क्या ज्ञात है? शूल चुभन तो ज्ञात ॥10॥
आप अधर मैं भी अधर, आप स्व वश हो देव।
मुझे अधर में लो उठा, परवश हूँ दुर्देव ॥11॥
व्यास बिना वह केन्द्र ना, केन्द्र बिना ना व्यास।
परिधि तथा उस केन्द्र का, नाता जोड़े व्यास ॥12॥
केन्द्र रहा सो द्रव्य है, और रहा गुण व्यास।
परिधि रही पर्याय है, तीनों में व्यत्यास ॥13॥
व्यास केन्द्र या परिधि को, बना यथोचित केन्द्र।
बिना हठाग्रह निरख तू, निज में यथा जिनेन्द्र ॥14॥
विषम पित्त का फल रहा, मुख का कडुवा स्वाद।
विषम वित्त से चित्त में बढ़ता है उन्माद ॥15॥
कानों से तो हो सुना, आँखों देखा हाल।
फिर भी मुख से ना कहे, सज्जन का यह ढाल ॥16॥
बाल गले में पहुँचते, स्वर का होता भंग।
बाल गेल में पहुँचते, पथ दूषित हो संघ ॥17॥
चिन्ता ना परलोक की, लौकिकता से दूर।
लोक-हितैषी बस बनूँ, सदा लोक से पूर ॥18॥

★

सूर्योदय दोहावली

सीधे सीझे शीत हैं, शरीर बिन जीवन्त।
सिद्धों को मम नमन हो, सिद्ध बनूँ श्रीमन्त ॥1॥
वचन-सिद्धि हो नियम से, वचन-शुद्धि पल जाए।
ऋद्धि-सिद्धि-परसिद्धियाँ, अनायास फल जायें ॥2॥
प्रभु दिखते तब और ना, और समय संसार।
रवि दिखता तो एक ही, चन्द्र साथ परिवार ॥3॥
भांति भांति की भ्रांतियाँ, तरह तरह की चाल।
नाना नारद-नीतियाँ ले जातीं पाताल ॥4॥
मानी में क्षमता कहाँ मिला सकें गुणमेल।
पानी में क्षमता कहाँ, मिला सके घृत तेल ॥5॥
स्वर्गों में ना भेजते, पटके ना पाताल।
हम तुम सबको जानते, प्रभु तो जाननहार ॥6॥
चिन्तन से चिन्ता मिटे, मिटे मनो मल मार।
प्रसाद मानस में भरे, उभरें भले विचार ॥7॥
कटुक मधुर गुरु वचन भी, भविक चित्त हुलसाय।
तरुण अरुण की किरण भी, सहज कमल विकसाय ॥8॥
वेग बढ़े इस बुद्धि में, नहीं बढ़े आवेग।
कष्ट-दायिनी बुद्धि है, जिसमें ना संवेग ॥9॥

शास्त्र पठन ना, गुणन से निज में हम खो जाए।
कटि पर ना, पर अंक में, माँ के शिशु सो जाए ॥10 ॥
सुधी पहनता वस्त्र को, दोष छुपाने भ्रात।
किन्तु पहिन यदि मद करे, लज्जा की है बात ॥11 ॥
आगम का संगम हुआ, महापुण्य का योग।
आगम हृदयंगम तभी, निश्छल हो उपयोग ॥12 ॥
विवेक हो ये एक से, जीते जीव अनेक।
अनेक दीपक जल रहे, प्रकाश देखो एक ॥13 ॥
खण्डन-मण्डन में लगा, निज का ना ले स्वाद।
फूल महकता नीम का, किन्तु कटुक हो स्वाद ॥14 ॥
नीर-नीर को छोड़कर, क्षीर-क्षीर का पान।
हंसा करता भविक भी, गुण लेता गुणगान ॥15 ॥
चिन्तन मन्थन मनन जो, आगम के अनुसार।
तथा निरन्तर मौन भी, समता बिन निस्सार ॥16 ॥
पके पत्र फल डाल पर टिक न सकते देर।
मुमुक्षु क्यों ? ना निकलता, घर से देर सबेर ॥17 ॥
तब-मम-तव-मम-कब मिटे, तरतमता का नाश।
अन्धकार गहरा रहा सूर्योदय ना पास ॥18 ॥

★

दोहा दोहन (मंगल भावना)

सागर सम गंभीर मैं, बनूँ चन्द्र-सम शान्त।
गगन तुल्य स्वाश्रित रहूँ, हरूँ दीप-सम ध्वान्त ॥1 ॥
तन मन को तप से तपा, स्वर्ण बनूँ छविमान।
भक्त बनूँ भगवान को, भजूँ बनूँ भगवान ॥2 ॥
फूल बिछाकर पन्थ में, पर प्रति बन अनुकूल।
शूल बिछाकर कर भूल से, मत बन तू प्रतिकूल ॥3 ॥
पाप प्रथम मिटता प्रथम, तजो पुण्य फल भोग।
पुनः पुण्य मिटता धरो, आतम-निर्मल योग ॥4 ॥
ज्ञान दुःख का मूल है, ज्ञान ही भव का कूल।
राग सहित प्रतिकूल है, राग रहित अनुकूल ॥5 ॥
रवि सम पर उपकार मैं, करूँ समझ कर्तव्य।
रखूँ न मन में मान मद, सुन्दर हो भवितव्य ॥6 ॥
तामस बस प्रतिलोम हो, मुझमें चिर बस जाये।
है यह हार्दिक भावना, मोह सभी नश जाये ॥7 ॥
शान्त करूँ सब पाप को, हरूँ ताप बन शान्त।
गति आगति सब मिटे, मिले आप निज प्रान्त ॥8 ॥
सन्मति को मम नमन हो, मम मति सन्मति होय।
सुर नर पशु गति सब मिटे, गति पंचम गति होय ॥9 ॥

तिल में जिस विध तैल हैं, अग्नि काष्ठ में जान।
शंकर तन में हैं रहा, जरा सोच कल्याण ॥10॥
तन मिला तुम तप करो, करो कर्म का नाश।
रवि-शशि से भी अधिक है तुममे दिव्य प्रकाश ॥11॥
पर में सुख कहीं है नहीं, खुद ही सुख की खान।
निजी नाभि में गंध है, मृग भटके बिन ज्ञान ॥12॥
आत्म कथा तज क्यों करो, नित विकथा निस्सार।
पय तज पीते विष भला, क्यों हो निज उद्धार ॥13॥
चन्दर-चन्दन चाँदनी, से जिन धुनि अति शीत।
उसका सेवन मैं करूँ, मन वच तन कर नीत ॥14॥
ना तो पर पर रोश हो, ना कर्मों का दोष।
है अपना अपराध यह, खोया है निज होश ॥15॥
सदा सरलता साध लो, और कुटिलता त्याग।
बनो धवल तुम हंस से, विरागता से राग ॥16॥
लाभ उलटता हो भला, भला उलटता लाभ।
हो सब ज्यों का त्यों सदा, भला रहे बदलाव ॥17॥
रवि से बढ़कर तेज हैं, शशि से बढ़कर ज्योत।
झाँक देख निज में जरा, सुख का खुलता स्रोत ॥18॥

★

नीति-अमृत

हाथ देख मत देख लो, मिला बाहुबल पूर्ण।
सदुपयोग बल का करो, सुख पाओ सम्पूर्ण ॥1॥
देख सामने चल अरे, दीख रहे अवधूत।
पीछे मुड़कर देखता, उसको दिखता भूत ॥2॥
उगते अंकुर का दिखा, मुख सूरज की ओर।
आत्म बोध हो तुरत ही, मुख संयम की ओर ॥3॥
कूप बनो तालाब ना, नहीं कूप मंडूक।
बरसाती मेंढ़क नहीं, बरसो घन बन मूक ॥4॥
तत्त्व दृष्टि तज बुध नहीं, जाते जड़ की ओर।
सौरभ तज मल पर दिखा, भ्रमर भ्रमित कब और ॥5॥
संत पुरुष से राग भी, शीघ्र मिटाता पाप।
ऊष्ण नीर भी आग को, क्या न बुझाता आप ॥6॥
लगाम अंकुश बिन नहीं, हय गय देते साथ।
व्रत श्रुत बिन मन कब चले, विनम्र करके माथ ॥7॥
भले कूर्म गति से चलो, चलो की ध्रुव की ओर।
किन्तु कूर्म के धर्म को, पालो पल-पल और ॥8॥
खुला खिला हो कमल वह, जब लौं जल सम्पर्क।
छूटा सूखा धर्म बिन, नर पशु में ना फर्क ॥9॥

भू पर निगले नीर में, ना मेंढ़क को नाग।
निज में रह बाहर गया, कर्म दबाते जाग ॥10॥
पेटी भर ना पेट भर, खेती कर नाऽऽखेट।
लोकतंत्र में लोक का, संग्रह हो भरपेट ॥11॥
सार-सार का ग्रहण हो, असार को फटकार।
नहीं चालनी तुम बनो, करो सूप सत्कार ॥12॥
मात्रा मौलिक कब रही, गुणवत्ता अनमोल।
जितना बढ़ता ढोल है, उतना बढ़ता पोल ॥13॥
दूर दिख रही लाल सी, पास पहुँचते आग।
अनुभव होता पास का, ज्ञान दूर का दाग ॥14॥
खिड़की से क्यों देखता, दिखे दुःखद संसार।
खिड़की में अब देख ले, मिले सुखद साकार ॥15॥
थक जाना ना हार है, पर लेना है श्वास।
रवि निशि में विश्राम ले, दिन में करे प्रकाश ॥16॥
यम दम शम सम तुम धरो, क्रमशः कम श्रम होय।
नर से नारायण बनो, अनुपम अधिगम होय ॥17॥
स्वीकृत हो मम नमन ये, जय-जय-जय-जयसेन।
जैन बना अब जिन बनूँ, मन रटता दिन रैन ॥18॥

★

पूज्य-वंदना

सुरासरों से है सदा, पूजित जिनके पाद।
पूज्यपाद को नित नमूँ, पाऊँ परम प्रसाद ॥1॥
पूज्यपाद गुरु पाद में, प्रणाम हो सौभाग्य।
पाप ताप संताप घट, और बढ़े वैराग्य ॥2॥
दीनों के दुर्दिन मिटे, तुम दिनकर को देख।
सोया जीवन जागता, मिटता अघ अविवेक ॥3॥
कौन पूजता मूल्य क्या, शून्य रहा बिन अंक।
आप अंक है शून्य मैं, प्राण फूँक दो शंख ॥4॥
किस वन की मूली रहा, मैं तुम गगन विशाल।
दरिया में खसखस रहा, दरिया मौन निहार ॥5॥
शिवपथ नेता जितमना, इन्द्रिय जेता धीश।
तथा प्रणेता शास्त्र के, जय-जय-जय-जगदीश ॥6॥
संत पूज्य अरहंत हो, यथाजात निर्ग्रन्थ।
अन्त-हीन-गुणवन्त हो, अजेय हो जयवन्त ॥7॥
सीधे सीझे शीत हैं, शरीर बिन जीवन्त।
सिद्धों को शुभ नमन हो, सिद्ध बनूँ श्रीमन्त ॥8॥
सार-सार दे शारदे, बनूँ विशारद धीर।
सहार दे दे तार दे, उतार दे उस तीर ॥9॥

बनूँ निरापद शारदे, वर दे ना कर देर।
देर खड़ा कर जोड़ के, मन से बनूँ सुमेर ॥10॥
नमूँ भारती तारती, उतारती उस तीर।
सुधी उतारे आरती, हरती खलती पीर ॥11॥
भार रहित मुझ भारती, कर दो सहित सुभाल।
कौन सँभाले माँ बिना, ओ माँ यह है बाल ॥12॥
शत-शत सुर-नर पति करें, वंदन शत-शत बार।
जिन बनने जिन चरण रज, लूँ मैं शिर पर धार ॥13॥
स्वयं तिरे ना तारती कभी अकेली नाव।
पूजा नाविक की करो, बने पूज्य तव नाव ॥14॥
प्रभु को लख हम जागते, वरना सोते घोर।
सूर्योदय प्रभु आप हैं, चन्द्रोदय है और ॥15॥
क्रूर भयानक सिंह भी, फना उठाते नाग।
तीर्थ जहाँ पर शांत हो, लपटों वाली आग ॥16॥
ज्ञान छोर तुम मैं रहा, ना समझ की छोर।
छोर पकड़कर झट इसे, खीचों अपनी ओर ॥17॥
हीरा मोती पद्म ना, चाहूँ तुमसे नाथ।
तुम सा तम तामस मिटा, सुखमय बनूँ प्रभात ॥18॥

★

शिक्षाप्रद-दोहावली

सागर का जल क्षार क्यों, सरिता मीठी सार।
बिन श्रम संग्रह अरुचि है, रुचिकर श्रम उपकार ॥1॥
उन्नत बनने नत बनो, लघु से राघव होय।
कर्ण बिना भी धर्म से, विजयी पाण्डव होय ॥2॥
नहीं सर्वथा व्यर्थ है, गिरना ही परमार्थ।
देख गिरे को हम जगे, सही करे पुरुषार्थ ॥3॥
कौरव रव रव में गये, पाण्डव क्यों शिवधाम।
स्वार्थ और परमार्थ का, और कौन परिणाम ॥4॥
भूल नहीं पर भूलना, शिवपथ में वरदान।
भूल नदी गिरी को करे, सागर का संधान ॥5॥
सूरज दूरज हो भले, भरी गगन में धूल।
पर सर में नीरज खिले, धीरज हो भरपूर ॥6॥
ईश दूर पर मैं सुखी, आस्था लिये अभंग।
ससूत्र बालक खुश रहे, नभ में उड़े पतंग ॥7॥
प्रभु दर्शन फिर गुरु कृपा, तदनुसार पुरुषार्थ।
दुर्लभ जग में तीन ये, मिले सार परमार्थ ॥8॥
अन्त किसी का कब हुआ, अनंत सब हे सन्त।
पर सब मिटता सा लगे, पतझड़ पुनः बसन्त ॥9॥

ज्ञायक बन गायक नहीं, पाना है विश्राम।
लायक बन नायक नहीं, जाना है शिवधाम ॥10॥
सूक्ष्म वस्तु यदि न दिखे, उनका नहीं अभाव।
तारा राजी रात में, दिन में नहीं दिखाव ॥11॥
लघु कंकर भी डूबता, तिरे काष्ठ स्थूल।
क्यों मत पूछो तर्क से, स्वभाव रहता दूर ॥12॥
कल्प काल से चल रहे, विकल्प ये संकल्प।
अल्प काल भी मौन ले, चलता अन्तर्जल्प ॥13॥
सुचिर काल से सो रहा, तन का करता राग।
ऊषा सम नरजन्म है, जाग सके तो जाग ॥14॥
दिन का हो या रात का, सपना सपना होय।
सपना अपना सा लगे, किन्तु न अपना होय ॥15॥
दोष रहित आचरण से, चरण पूज्य बन जाये।
चरण धूल तक सर चढ़े, मरण पूज्य बन जाये ॥16॥
एक साथ दो बैल तो, मिलकर खाते घास।
लोकतंत्र पा क्यों लड़ो, क्यों आपस में त्रास ॥17॥
बूँद-बूँद के मिलन से, जल में गति आ जाये।
सरिता बन सागर मिले, सागर बूँद समाय ॥18॥

★

अध्यात्म-दोहावली

जीवन समझो मोल है, न समझो तो खेल।
खेल खेल में युग गया, वही खिलाड़ी खेल ॥1॥
खेल सको तो खेल लो, एक अनोखा खेल।
आप खिलाड़ी आप ही, बनो खिलौना खेल ॥2॥
किस-किस का कर्ता बनूँ, किस-किस का मैं कार्य।
किस-किस का कारण बनूँ, यह सब क्यों कर आर्य ॥3॥
पर का कर्ता मैं नहीं, मैं क्यों पर का कार्य।
कर्ता कारण कार्य हूँ, मैं निज का अनिवार्य ॥4॥
घुट-घुट कर क्यों जी रहा, लुट लुट कर क्यों दीन।
अन्तर्घट में हो जरा, सिमट सिमट कर लीन ॥5॥
यान करे बहरे इधर, उधर यान में शांत।
कोरा कोलाहल यहाँ, भीतर तो एकांत ॥6॥
स्वर्ण बने वह कोयला, और कोयला स्वर्ण।
पाप-पुण्य का खेल है, आतम में ना वर्ण ॥7॥
प्रमाण का आकार ना, प्रमाण में आकार।
प्रकाश का आकार ना, प्रकाश में आकार ॥8॥
जिनवर आँखें अधखुली, जिनमें झलके लोक।
आप दिखे सब देख ना, स्वस्थ रहे उपयोग ॥9॥

अलख जगाकर देख ले, विलख विलख मत हार।
निरख निरख निज को जरा, हरख हरख इस बार ॥10॥

कर्तापन की गंध बिन, सदा करे कर्तव्य।
स्वामीपन ऊपर धरे, ध्रुव पर हो मन्तव्य ॥11॥

चेतन में ना भार है, चेतन की न छाँव।
चेतन की फिर हार क्यों, भाव हुआ दुर्भाव ॥12॥

धन जब आता बीच में, वतन सहज हो गौण।
तन जब आता बीच में, चेतन होता मौन ॥13॥

फूल राग का घर रहा, काँटा रहा विराग।
तभी फूल का पतन हो, राग त्याग तू जाग ॥14॥

मोह दुःखों का मूल है, धर्म सुखों का स्रोत।
मूल्य तभी पीयूष का, जब हो विष से मौत ॥15॥

पर घर में क्यों घुस रही, निज घर तज यह भीड़।
पर नीड़ो में कब घुसा, पंछी तज निज नीड़ ॥16॥

विषय-विषम विष है सुनो, विष सेवन से मौत।
विषय-कषाय विसार दो, स्वानुभूति सुख स्रोत ॥17॥

कुन्दकुन्द को नित नमूँ, हृदय कुन्द खिल जाय।
परम सुगन्धित महक में, जीवन मम घुल जाये ॥18॥

★

मंगल-भावना

मंगलमय जीवन बने, छा जाये सुख छाँव।
जुड़े परस्पर दिल सभी, टले अमंगल भाव ॥1॥

'ही' से 'भी' की ओर ही, बढ़ें सभी हम लोग।
छह के आगे तीन हो, विश्व शांति का योग ॥2॥

यही प्रार्थना वीर से, अनुनय से कर जोर।
हरी भरी दिखती रहे, धरती चारों ओर ॥3॥

मेरा-तेरा पन मिटे, भेदभाव का नाश।
रीति-नीति सुधरे सभी, वेद भाव में वास ॥4॥

ऊधम से तो दम घुटे, उद्यम से दम आय।
बनो दमी हो आदमी, कदम-कदम जम जाये ॥5॥

मरहम पट्टी बांध के, वृण का कर उपचार।
ऐसा यदि न बन सके, डंडा तो मत मार ॥6॥

नम्र बनो मानी नहीं, जीवन वर-ना मौत।
बेत बनो न बट बनो, सुर-शिव-सुख का स्रोत ॥7॥

तन मन से औ वचन से, पर का कर उपकार।
रवि सम जीवन बस बने, मिलता शिव उपकार ॥8॥

दिखा रोशनी रोश न, शत्रु मित्र बन जाये।
भावों का बस खेल है, शूल फूल बन जाये ॥9॥

धोओ मन को धो सको, तन को धोना व्यर्थ।
खोओ गुण में खो सको, धन में खोना व्यर्थ ॥10॥
निर्धनता वरदान है, अधिक धनिकता पाप।
सत्य तथ्य की खोज में, निर्गुणता अभिशाप ॥11॥
अर्थ नहीं परमार्थ की, ओर बड़े भूपाल।
पालक जनता के बने, बनें नहीं भूचाल ॥12॥
दूषण न भूषण बनो, बनो देश के भक्त।
उम्र बढ़े बस देश की, देश रहे अविभक्त ॥13॥
कब तक कितना पूछ मत, चलते चल अविराम।
रुको-रुको यूँ सफलता, आप कहे यह धाम ॥14॥
गुण ही गुण पर में सदा, खोजूँ निज में दाग।
दाग मिटे बिन गुण कहाँ, तामस मिटते राग ॥15॥
पंक नहीं पंकज बनूँ, मुक्ता बनूँ न सीप।
दीप बनूँ जलता रहूँ, प्रभु-पद-पद्म समीप ॥16॥
यही प्रार्थना वीर से, शान्ति रहे चहुँ ओर।
हिल मिलकर सब एक हों, बढ़ें धर्म की ओर ॥17॥
गोमटेश के चरण में, नत हो बारम्बार।
विद्यासागर कब बनूँ, भव सागर कर पार ॥18॥

★

निजानुभव गीतिका

जो जानते सकल लोक तथा अलोक,
ना मान-यान परिरूढ़ सदा अशोक!
ऐसे महेश, वृषभेश, प्रभो! जिनेश,
रक्षा करे मम, मुझे सुख दें विशेष ॥1॥
थे ज्ञानसागर गुरु मम प्राण प्यारे,
थे पूज्य साधुगण से बुध मुख्य न्यारे।
शास्त्रानुसार चलते, मुझको चलाते,
वंदूँ, उन्हें विनय से शिर को झुकाते ॥2॥
वाणी जिनेन्द्र-कथिता दुखहारिणी है,
संत्रस्त भव्य जन को सुखदायिनी है,
तेरा करूँ स्तवन मैं अयि अम्बदेवी!
तो शीघ्र ही बन सकूँ निज आत्मसेवी ॥3॥
देही बने अशुभ से, भव में गुलाम,
विश्राम ही न मिलता, न मिले स्वधाम।
तो भी न मूढ़ यह भूल सुधारता है,
मोही न गूढ़ जिन तत्त्व विचारता है ॥4॥
जो अन्य का परिचयी, निज का नहीं है,
होता सुखी न वह चूँकि परिग्रही है।
जो बार-बार पर को लख फूलता है,
संसार में भटकता वह भूलता है ॥5॥

जो जो सुखार्थ जड़ को जब हैं जुटाते,
पाते नहीं सुख कभी दुख ही उठाते।
क्या कूट भूस तृण को हम धान्य पाते,
अक्षुण्ण कार्य करते थक मात्र जाते ॥6॥

विज्ञान को सहज ही निज में जगाना,
रे! हाट जाकर उसे न खरीद लाना।
तू चाहता यदि उसे अति शीघ्र पाना,
आना नहीं, भटकना न कहीं न जाना ॥7॥

लक्ष्मी मिले, मिलन हो, मम हो विवाह,
मूढ़ात्म को विषय की दिन-रैन चाह।
साधू न किन्तु पर में सुख को बताते,
क्या नीर के मथन से नवनीत पाते? ॥8॥

आकाश में कठिन पत्थर फेंक देना,
जैसा निजीय कर से शिर फोड़ लेना।
वैसा सदैव करता निज आत्मघात।
जो एकता समझता जड़ देह साथ ॥9॥

नादाना, दीन, मतिहीन,कुशील, मोही,
क्यों ''सार है'' कह रहा, जड़ देह को ही।
तू काँच में रम रहा, तज दिव्य हीरा!!
क्यों घास तू चर रहा, तज मिष्ट सीरा ॥10॥

ना बाल, लाल, न ललाम, न नील काला,
तू तो निराल, कल, निर्मल शील वाला।
तू शीघ्र बोधमय ज्योति शिखा जला ले,
अज्ञात को निरख ले, शिवसौख्य पाले ॥11॥

रे मूढ़! तू जनमता, मरता अकेला,
कोई साथ चलता, गुरु भी न चेला।
है स्वार्थपूर्ण यह निश्चय एक मेला,
जाते सभी बिछुड़ के जब अन्त बेला ॥12॥

मैं कौन हूँ? किधर से अब आ रहा हूँ?
जाना कहाँ? इधर से जब जा रहा हूँ।
ऐसा विचार यदि तू करता न प्राणी,
कैसे तुझे फिर मिले वह मुक्ति-रानी? ॥13॥

देखो! नदी प्रथम है निज को मिटाती,
खोती तभी, अमित सागर रूप पाती।
व्यक्तित्व को अहम् को, मद को मिटा दे,
तू भी स्व को सहज में, प्रभु में मिला दे ॥14॥

ना सम्पदा न विपदा रहती सदा है,
दोनों अहो! प्रवहमान, मृषा, मुधा है।
स्थायी नहीं क्षणिक जो मिटती उषा है,
काली वही तदुपरान्त घनी निशा है ॥15॥

खाना खिला, जल पिला, तन को सुलाता,
तू देह की मलिनता, जल से धुलाता।
चिन्ता नहीं पर तुझे निज की अभी भी,
कैसे तुझे सुख मिले, न मिले कभी भी ॥16॥

स्वादिष्ट है अशन तू इसको खिलाता,
घी, दूध औ सरस पेय तथा पिलाता।
तो भी सदा तृषित पीड़ित मात्र भूखा,
रे मूढ़! कार्य तव है कितना अनूखा ॥17॥

आत्मा रहा, रह रहा, चिर औ रहेगा,
कोई कदापि उसको न मिटा सकेगा।
विश्वास ईदृश न हो अयि भव्य लोगो!
सारे अरे! सुचिर दुस्सह दुःख भोगो ॥18॥

क्या हो गया समझ में मुझ को न आता,
क्यों बार-बार मन बाहर दौड़ जाता।
स्वाध्याय, ध्यान करके मन रोध पाता,
पै श्वान सा मन सदा मल खोज लाता ॥19॥

तू कौन है? विदित है? कुछ है पता भी,
क्यों मौन है? स्मरण है निज की कथा भी?
तू जानता न निज को, न सुखी बनेगा,
संसार दुःख सहता, भ्रमता फिरेगा ॥20॥

तू बार-बार मरता, तन धार-धार,
पीड़ा अतः सह रहा, उसका न पार।
जो भोग-लीन रहता, तज आत्म-ध्यान,
होता नहीं वह सुखी अयि भव्य! जान ॥21॥

माता, पिता सुत, सुता वनिता व भ्राता,
मेरे न ये, न मम है इन संग नाता।
मैं एक हूँ पृथक् हूँ सबसे सदा से,
मैं शुद्ध हूँ भरित-बोधमयी सुधा से ॥22॥

वर्षा घनी, मुसल-धार, अपार नीर,
योगी खड़े स्थिर, दिगम्बर है शरीर।
आश्चर्य पै न उनके मुख पै विकार,
पीड़ा व्यथा, दुख नहीं समता अपार ॥23॥

सारी धरा जलमयी नभ मेघमाला,
भानू हुआ उदित हो, पर ना उजाला।
ऐसी भयानक दशा फिर भी स्वलीन,
वे धन्य हैं, अभय हैं, मुनि जो प्रवीण ॥24॥

छाया नहीं विपिन में, गरमी घनी है,
तेजोमय अरुण की किरणें तनी हैं।
पै योग धार, जड़ काय सुखा रहे हैं,
ज्ञानी तभी, अघ कषाय घटा रहे हैं ॥25॥

अत्यन्त लू चल रही, नभ धूल फैली,
है स्वेद से लथपथी मुनि-देह मैली।
हैं ध्यानलीन सब तापस वे तथापि,
निष्कम्प मेरु सम, ना डरते कदापि ॥26॥

निन्दा करे, स्तुति करे, तरवार मारे,
या आरती मणिमयी सहसा उतारे।
साधू तथापि मन में समभाव धारे,
बैरी सहोदर जिन्हें इकसार सारे ॥27॥

जो जानते भवन को वन को समान,
वे पूज्यनीय भजनीय अहो! महान्।
दुर्गन्ध से न करते बुधलोग ग्लान,
तो फूलते न सुख में,दुख में न म्लान ॥28॥

सच्चा वही धरम है जिसमें न हिंसा,
होगी नहीं वचन से उसकी प्रशंसा।
आधार मात्र उसका यदि भव्य लेता,
संसार पार करता, बनताऽरिजेता ॥29॥

कोई पदार्थ जग में न बुरे न अच्छे,
ऐसा सदैव कहते, गुरुदेव सच्चे।
साधू अतः न करते रति, राग, द्वेष,
नीराग-भाव धरते, धरते न क्लेश ॥30॥

ज्ञानी कभी मरण से डरते नहीं हैं,
तो चाहते सुचिर जीवन भी नहीं हैं।
वे मानते, मरण-जीवन देह के हैं,
ऐसा निरन्तर सुचिन्तन रे! करें हैं ॥31॥

जो आपको समझते सबसे बड़े हैं,
वे धर्म से बहुत दूर अभी खड़े हैं।
मिथ्याभिमान करना सबसे बुरा है,
स्वामी! अतः न मिलता, सुख जो खरा है ॥32॥

तूने किया विगत में कुछ पुण्य-पाप,
जो आ रहा उदय में स्वयमेव आप।
होगा न बन्ध तब लौं, जब लौं न राग,
चिन्ता नहीं उदय से बन वीतराग! ॥33॥

ना आधि-व्याधि मुझमें, न उपाधियाँ हैं,
मेरा न हैं मरण, ये जड़ पंक्तियाँ हैं।
मैं शुद्ध चेतन निकेतन हूँ निराला,
आलोक-सागर अतः समदृष्टि वाला ॥34॥

स्वामी! 'निजानुभव' नामक काव्य प्यारा,
कल्याण-खान, भवनाशक श्राव्य न्यारा।
जो भी इसे विनय से पढ़, आत्म ध्यावे,
'विद्यादिसागर' बने शिवसौख्य पावे ॥35॥

निरंजन गीतिका

संतों नमस्कृत सुरों बुध मानवों से,
ये हैं जिनेश्वर नमूँ मन वाक्तनों से।
पश्चात करूँ स्तुति निरंजन की निराली,
मेरा प्रयोजन यही कि मिटे भवाली ॥1॥

जो आपमें निरत है सुख लाभ लेने,
आते न पास उसके विधि कष्ट देने।
क्या सिंह के निकट भी गज झुण्ड जाता?
जाके उसे भय दिखाकर क्या सताता? ॥2॥

श्री पाद ये कमल-कोमल लोक में है,
ये ही यहाँ शरण पंचम काल में हैं।
है भव्य कंज खिलता, इन दर्श पाता,
पूजूँ अतः हृदय में इन को बिठाता ॥3॥

वैराग्य से तुम सुखी भज के अहिंसा,
होता दुखी जगत है कर राग हिंसा।
सत् साधना सहज साध्य सदा दिलाती,
दुःसाधना दुखमयी विष ही पिलाती ॥4॥

हो आपको नमन तो सघना अघाली,
पाती विनाश पल में दुख शील वाली।
फैला पयोद दल हो नभ में भले ही,
थोड़ा चले पवन तो बिखरे उड़े ही ॥5॥

लो! आपके चरण में भवभीत मेरा,
विश्रान्त है अभय पा मन है अकेला।
माँ का उदारतम अंक अवश्य होता,
निःशंक हो शरण पा शिशु चूँकि सोता ॥6॥

हे ईश धीश मुझमें बल बोधि डालो!
कारुण्य धाम करुणा मुझमें दिखा लो।
देहात्म में बस विभाजन तो करुँगा,
शीघ्रातिशीघ्र सुख भाजन तो बनूँगा ॥7॥

स्याद्वादरूप मत में, मत अन्य खारे,
ज्यों ही मिले मधुर हो बन जाएं प्यारे।
मात्रानुसार यदि भोजन में मिलाओ,
खारा भले लवण हो अति स्वाद पाओ ॥8॥

औचित्य! है प्रथम अम्बर को हटाया,
पश्चात् दिगम्बर विभो! मन को बनाया।
रे धान का प्रथम तो छिलका उतारो,
लाली उतार फिर भात पका, उड़ा लो ॥9॥

संसार के विविध वैभव भोग पाने,
पूजें तुम्हें बस कुधी जड़, ना सयाने।
ले स्वर्ण का हल, कृषी करता कराता,
वो मूर्ख ही कृषक है जग में कहाता ॥10॥

लो! आपके स्तवन से बहु निर्जरा हो,
स्वामी! तथापि विधिबंधन भी जरा हो।
अच्छी दुकान चलती धन खूब देती,
तो भी किराय कम से कम क्या न लेती? ॥11॥

साता नहीं उदय में जब हो असाता,
मैं आपके भजन में बस डूब जाता।
है चन्द्र को निरखता सघनी निशा में,
जैसा चकोर रुचि से न कभी दिवा में ॥12॥

चाहूँ न राज सुख में सुरसम्पदा भी,
चाहूँ न मान यश देह नहीं कदापि।
हे ईश गर्दभ समा तन भार ढोना,
कैसे मिटे, कब मिटे मुझको कहो ना ॥13॥

हो आज सीमित भले मम ज्ञान धारा,
होगी असीम तुम आश्रय पा अपारा।
प्रारम्भ में सरित हो पतली भले ही,
पै अन्त में अमित सागर में ढले ही ॥14॥

★

भावना गीतिका

सम्मान मैं समय का करता कराता,
हूँ 'भावनाशतक' काव्य अहो! बनाता।
मेरा प्रयोजन प्रभो! कुछ और न है,
जीतूँ विभाव भव को बस भावना है ॥1॥

सेना विहीन नृप ज्यों जय को न पाता,
त्यों हीन जो विनय से शिव को न पाता।
सत् साधना यदि करे दुख भी टलेगा,
संसार से सहज से सुख भी मिलेगा ॥2॥

पूजा गया मुनिगणों यति योगियों से,
त्यों शील, नीलमणि ज्यों जगभोगियों से।
सत् शील में सतत् लीन अतः रहूँ मैं,
लो! मोक्ष को निकट ही फलतः लखूँ मैं ॥3॥

वे शान्त, सन्त अरहंत अनंत ज्ञाता,
वन्दूँ उन्हें निरभिमान स्वभाव धाता।
होऊँ प्रवीण फलतः पल में प्रमाता,
गाता सुगीत 'जिनका' वह सौख्यपाता ॥4॥

शास्त्रानुसार चलते सबको चलाते,
पाते स्वकीय सुखको पर में न जाते।
ये रागद्वेष तजते सबकी उपेक्षा,
मैं तो अभी कुछ रखूँ उनकी अपेक्षा ॥5॥

आचार्य देव मुझको कुछ बोध देवो,
रक्षा करो शरण में शिशु शीघ्र लेवो।

क्या दिव्य अंजन प्रकाश नहीं दिलाता,
क्या शीघ्र नेत्रगत धूलि नहीं मिटाता? ॥6॥

ये योग में अचल मेरु बने हुये हैं,
ले खड्ग कर्मरिपु को दुख दे रहे हैं।
आचार्य तो अमृतपान करा रहे हैं,
ये मेघ हैं, हम मयूर सुखी हुए हैं ॥7॥

आचार्य को विनय से उर में बिठालूँ,
मैं पूज्यपाद रज को शिरपै चढ़ा लूँ।
हे मित्र! मोक्ष मुझको फलतः मिलेगा,
विश्वास है यह नियोग नहीं टलेगा ॥8॥

स्वाध्याय से चपलता मन की घटा दी,
काषयिकी परिणती जिनने मिटा दी।
पावें सुशीघ्र उवझाय स्वसम्पदा वे,
आवें न लौट भव में गुरु यों बतावें ॥9॥

वे वैद्य लौकिक शरीर इलाज जाने,
ये वैद्यराज भवनाशक हैं सयाने।
हैं वंद्य, पूज्य, शिवपंथ हमें बताते,
निःस्वार्थपूर्ण निज जीवन को बिताते ॥10॥

दुर्वेदना हृदय की क्षण भाग जाती,
संवेदना स्वयम् की झट जाग जाती।
ऐसी प्रतिक्रमण की महिमा निराली,
तू धार शीघ्र इसको वन भाग्यशाली ॥11॥

संसार सागर असार अपार खारा,
कोई न धर्म बिन है तुमको सहारा।

नौका यही तरणतारण मोक्षदात्री,
ये जा रहे, कुछ गये उस पार यात्री ॥12 ॥
वात्सल्य हो उदित ओ उर में जभी से,
है क्रूरभाव मिटते सहसा तभी से।
भानू उगे गगन भू उजले दिखाते,
क्या आप तामस निशा तब देख पाते? ॥13 ॥
उन्मत्त होकर कभी मन का न दास,
हो जा उदास सबसे बन वीर दास।
वात्सल्यरूप सर में डुबकी लगाले,
ले ले सुनाम 'जिनका' प्रभु गीत गाले ॥14 ॥

★

संत साधु बनके विचरुँ.....

संत साधु बनके विचरुँ, वह घड़ी कब आयेगी।
चल पड़ूँ में मोक्ष पथ पर, वह घड़ी कब आयेगी ॥
हाथ में पिच्छी कमण्डल, ध्यान आतम राम का।
छोड़कर घर बार दीक्षा की घड़ी कब आयेगी ॥ संत साधु .....
आयेगा वैराग्य मुझको, इस दुःखी संसार से।
त्याग दूँगा मोह ममता, वह घड़ी कब आयेगी ॥ संत साधु .....
पाँच समिति तीन गुप्ति बाईस परीषह भी सहूँ।
भावना बारह जूँ भाऊँ, वह घड़ी कब आयेगी ॥ संत साधु .....
बाह्य उपाधि त्याग कर, निज तत्त्व का चिन्तन करूँ।
निर्विकल्प होवे समाधि,वह घड़ी कब आयेगी ॥ संत साधु .....

श्रमण गीतिका

योगी करें स्तवन भाव भरे स्वरों से,
जो हैं सुसंस्तुत नरों, असुरों सुरों से।
वे वर्धमान गतमान मुझे बचावें,
काटें कुकर्म मम मोक्ष विभो! दिलावें ॥1 ॥
जो 'ज्ञानसागर' सुधी गुरु हैं हितैषी,
शुद्धात्म में निरत, नित्य हितोपदेशी।
वे पाप-ग्रीष्म ऋतु में जल हैं सयाने,
पूजूँ उन्हें सतत केवलज्ञान पाने ॥2 ॥
हे शारदे! अब कृपा कर दे जरा तो,
तेरा उपासक खरा, भव से डरा जो!
माता! विलम्ब करना मत, मैं पुजारी,
आशीष दो, बन सकूँ बस निर्विकारी ॥3 ॥
जो जीतता सब क्षुधादि परीषहों को,
संहार रागमय-भाव स्ववैरियों को।
है वीतराग बनता वह शीघ्रता से,
शुद्धात्म को निरखता, बचता व्यथा से ॥4 ॥
जीती जिनेश! जिसने निज इन्द्रियाँ हैं,
माना गया यति वही, जग में यहाँ है।
श्रद्धा-समेत उसको सिर मैं नमाता,
शुद्धात्म को निरख, शीघ्र बनूँ प्रमाता ॥5 ॥
हूँ देह से पृथक् चेतन शक्ति वाला,
स्वामी! सदैव मुझसे तन भी निराला।

यों जान, मान तन का मद छोड़ता हूँ,
मैं मात्र मोक्ष-पथ से मन जोड़ता हूँ ॥6 ॥
ये पंच पाप इनको सब शीघ्र छोड़ो,
धारो महाव्रत सभी मन को मरोड़ो।
औ ! राग का तुम समादर न करो रे!
देवाधिदेव 'जिन' को उर में धरो रे? ॥7 ॥
संसार में सुख नहीं, दुख का न पार,
ले आत्म में रुचि भला, सुख हो अपार।
सिद्धान्त का मनन तो कर चाव से तू,
क्यों लोक में भटकता पर भाव से तू ॥8 ॥
लिप्सा कभी विषय की मन में न लाओ,
चारित्र धारण करो, पर में न जाओ।
चिन्ता कदापि न अनागत की करोगे,
विश्राम स्वीय घर में चिरकाल लोगे ॥9 ॥
दुस्संग से प्रथम जीवन शीघ्र मोड़ो,
तो संग को समझ पाप तथैव छोड़ो।
विश्वास भी कुपथ में न कदापि लाओ,
शुद्धात्म को विनय से तुम शीघ्र पाओ ॥10 ॥
हूँ बाल, मन्द-मति हूँ, लघु हूँ, यमी हूँ,
मैं राग की कर रहा क्रम से कमी हूँ।
हे चेतन! सुखद-शान्ति-सुधा पिला दे,
माता! मुझे कर कृपा मुझमें मिला दे ॥11 ॥

परीषहजय गीतिका

मृदुल विषयमय लता जलाती शीतलतम हिमपात वही,
शान्त शारदा, शरण उसी की ले जीता दिन रात सही।
'शतक परीषह-जय' कहता बस मुनिजन, बुधजन मन हरसे,
मूल सहित सब अघ संघर से ज्ञान-मेघ फिर झट बरसे ॥1 ॥

उदय असाता का जब होता उलटी दिखती सुखदा है,
प्रथम भूमिका में ही होती क्षुधा वेदना दुखदा है।
समरस रसिया ऋषि समता से सब सहता निज ज्ञाता है,
सब का सब यह विधि फल तो है 'समयसार' गुन! गाता है ॥2 ॥

पाप-ताप का कारण तन की ममता का बस वमन किया,
शमी-दमी मतिमान मुनी ने समता के प्रति नमन किया।
विमल बोधमय, सुधाचाव से तथा निरन्तर पीता है,
उसे तृषा फिर नहीं सताती सुखमय जीवन जीता है ॥3 ॥

निरालम्ब हो स्वावलम्ब हो, जीवन जीते मुनिवर हैं,
कभी तृषा या अन्य किसी वश कुपित बने ना, मतिवर हैं।
श्वान भौंकते सौ-सौ मिलकर पीछे-पीछे चलते हैं,
विचलित कब हो गजदल आगे ललित चाल से चलते हैं ॥4 ॥

शीत-शील का अविरल-अविकल बहता जब है अनिल महा,
ऐसा अनुभव जन जन करते अमृत मूल्य का अनल रहा।

पग से शिर तक कपड़ा पहना कप-कप कपता जगत रहा,
किन्तु दिगम्बर मुनिपन से नहिं विचलित हो मुनि जगत रहा ॥5 ॥

तन से, मन से और वचन से ऊष्ण-परीषह सहते हैं,
निरीह तन से हो निज ध्याते बहाव में ना बहते हैं।
परम तत्त्व का बोध नियम से पाते यति जयशील रहे,
उनकी यशगाथा गाने में निशिदिन यह मन लीन रहे ॥6 ॥

विषयों को तो त्याग-पत्र दे व्रतधर शिवपथगामी हैं,
मत्कुण मच्छर काट रहे अहि, दया धर्म के स्वामी हैं।
कभी किसी प्रतिकूल दशा में मुनिमानस नहिं कलुषित हो,
शुचितम मानस सरवर-सा है सदा निराकुल विलसित हो ॥7 ॥

निरा, निरापद, निजपद दाता यही दिगम्बर पद साता,
पाप-प्रदाता आपद-धाता शेष सभी पद गुरु गाता।
हुए दिगम्बर अम्बर तजकर यही सोच कर मुनिवर हैं,
शिवपथ पर अविरल चलते हैं, हे जिनवर! तब अनुचर हैं ॥8 ॥

सड़ा गला शव मरा पड़ा जो बिना गड़ा, अधगड़ा जला,
भीड़ चील की चीर-चीरकर जिसे खा रही हिला-हिला।
दृश्य भयावह लखते, सुनते गजारि गर्जन मरघट में,
किन्तु ग्लानि, भय कभी न करते, रहते मुनिवर निज घट में ॥9 ॥

लाल कमल की आभा सी तन वाली हैं सुर वनिताएँ,
नील कमल सम विलसित जिनके लोचन हैं सुख-सुविधाएँ।

किन्तु स्वल्प भी विषय वासना जगा न सकती मुनि मन में,
सुखदा, समता सती, छबीली क्योंकि निवसती है उनमें ॥10 ॥

सभी तरह के पाद त्राण तज नग्न पाद से ही चलते,
चलते-चलते थक जाते पर निज पद में तत्पर रहते।
कंकर, कंटक चुभते-चुभते, लहुलुहान पद लोहित हो,
किन्तु यही आश्चर्य रहा है, मुनि का मन ना लोहित हो ॥11 ॥

आत्मबोध पा पूज्य साधु ने चंचल मन को अचल किया,
मोह लहर भी शान्त हुई है, मानस सरवर अमल जिया।
बहुविध दृढ़तम आसन से ही तन को संयत बना लिया,
जीव दया का पालन फलतः किस विध होता जना दिया ॥12 ॥

भू पर अथवा कठिन शिला पर काष्ठ फलक पर या तृण पे,
शयन रात में अधिक याम तक, दिन में नहिं संयम तन पे।
ब्रह्मचर्य व्रत सुदृढ़ बनाने यथाशक्ति यह व्रत धरना,
जितनिद्रक हो हित चिन्तक हो, अतिनिद्रा मुनि मत करना ॥13 ॥

क्रोध जनक हैं कठोर, कर्कश कर्ण कटुक कुछ वचन मिले,
विहार वेला में सुनने को अपने पथ पर श्रमण चले।
सुनते भी पर बधिर हुए-से आनाकानी कर जाते,
सहते हैं आक्रोश परीषह अबल, 'सबल होकर' भाते ॥14 ॥

काया लाली रही उषा की अशुचि राशि है लहर रही,
भवदुखकारण, कारण भ्रम का शरण नहीं है जहर रही।

इसका यदि वध हो तो हो पर इससे मेरा नाश कहाँ ?
बोध-धाम हूँ चरण सदन हूँ दर्शन का अवकाश यहाँ ॥15॥

अशन वसतिकादिक की ऋषि गण नहीं याचना करते हैं,
तथा कभी भी दीन-हीन बन नहीं पारणा करते हैं।
निजाधीनता फलतः निश्चित लुटती है यह अनुभव है,
पराधीनता किसे इष्ट है वही पराभव, भव-भव है ॥16॥

अनियत विहार करता फिर भी निर्बल सा ना दीन बने,
तथा किया उपवास तथापि परवश ना! स्वाधीन बने।
भोजन पाने चर्या करता पर भोजन यदि नहिं मिलता,
विषाद करता नहिं पर, भोजन मिला हुआ-सा मुख खिलता ॥17॥

सभी तरह के रोगों से जो मुक्त हुए हैं बता रहे,
कर्मों के ये फल हैं सारे, खारे जग को सता रहे।
रोगों का ही मंदिर तन है, अन्दर कितने पता नहीं,
उदय रोग का, कर्म मिटाता ज्ञानी को कुछ व्यथा नहीं ॥18॥

तृण कंटक पद में वह पीड़ा सतत दे रहे दुखकर हैं,
गति में अंतर तभी आ रहा रुक-रुक चलते मुनिवर हैं।
उस दुस्सह वेदन को सहते-सहते रहते शान्त सदा,
उसी भाँति मैं सहूँ परीषह शक्ति मिले, शिव शांति सुधा ॥19॥

तपन-ताप से तप्त हुआ तन स्वेद कणों से रंजित हो,
रज कण आकर चिपके फलतः स्नान बिना मल संचित हो।

मल परिषह तब साधु सह रहा सुधा पान वे सतत करें,
नीरस तरु सम तन है जिसका हम सब का सब दुरित हरें ॥20॥

कभी प्रशंसा करे प्रशंसक विनय समादर यदि करते,
नहीं मान-मद मन में लाते, मन को कलुषित नहिं करते।
प्रत्युत अन्दर घुस कर बैठा मान-कर्म के क्षय करने,
साधु निरंतर जागृत रहते जिनको शुचि अतिशय करने ॥21॥

अन्तराय का अन्त नहीं हो अतुल अमिट बल मुदित नहीं,
जब तक तुममें अनन्त अक्षय पूर्ण ज्ञान हो उदित नहीं।
ज्ञान क्षेत्र में तब तक निज को लघुतम ही स्वीकार करो,
तन-मन-वच से ज्ञान-मान का प्रतिपल तुम धिक्कार करो ॥22॥

सहो सदा अज्ञान परीषह नियोग है यह शिव मिलता,
अल्पज्ञान पर्याप्त रहा यदि निज अनुभवता भव टलता।
बहुत दिनों का पड़ा हुआ है सुमेरु सम तृण ढेर रहा,
एक अनल की कणिका से बस! जल मिटता क्षण देर रहा ॥23॥

अल्प मात्र भी ऐहिक सुख औ इन्द्रिय सुख वह मिला नहीं,
फिर, किस विध निर्वाण अमित सुख मुझे मिलेगा भला कहीं।
मुनि हो ऐसा कहता नहिं जिन-मत का गौरव नहिं खोता,
रहा अदर्शन यही परिषह-विजयी होता सुख-जोता ॥24॥

सुनीति गीतिका

चिन्मय-धन के धनिक रहे हैं, शिवसुख के जो जनक बने,
विरागता के सदन जिन्हें हो नमन सदा यह कनक बने।
लिखी गई यह अल्प ज्ञान से नीतिशतक की रचना है,
रोग शोक न रहे धरा पर ध्येय पाप से बचना है ॥1॥

पाप पंक में फँसे हुए हैं, विषय राग को सुख माने,
मोह पाश से कसे हुये हैं वीत-राग को दुख माने।
सत्य रहा यह कर्म योग से जिनको होता रोग यहाँ,
पथ्य कहाँ वह रुचता उनको अपथ्य रुचता भोग महा ॥2॥

पाप पंक में पतित हुआ हो साधु समागम यदि पाता,
प्रथम पुण्य से भव वैभव पा मुक्ति समागम पुनि पाता।
मिश्री का यदि सुयोग पाता खट्टा हो वह यदपि दही।
इष्टमिष्ट श्री खण्ड बनेगा,मूढ चाहता तदपि नहीं ॥3॥

गृहस्थ जब तक गृह में रहता विरागता का श्वास नहीं,
जैसा जीवन अनुभव वैसा सरागता का वास नहीं।
सूखी लकड़ी जलती जिससे धूम्र नहीं वह उठता है,
गीली लकड़ी मन्द जलेगी धूम्र उठे, दम घुटता है ॥4॥

मुनियों को आध्यात्म शास्त्र वह प्रायः परमामृत प्याला,
विषयरसिक हैं गृही जनों को विषम-विषमतम है हाला।
जीवन दाता प्राण प्रदाता नीर मीन को माना है,
औरों को तो मृत्यु रहा है यही योग्यता बाना है ॥5॥

मोक्षमार्ग में विचरण करता श्रमण बना है नगन रहा,
किन्तु परिग्रह यदि रखता है अणुभर भी सो विघन रहा।
पवन वेग से मयूर का वह पुच्छ भार जब ताड़ित हो,
मयूर समुचित चल ना सकता विचलित पद हो बाधित हो ॥6॥

पापात्मा का आश्रय पाकर सन्त वचन भी पाप बने,
पुण्यात्मा का आश्रय पाकर पुण्य बने भवताप हने।
नभ से गिरती जल की धारा! इक्षु-दण्ड में मधुर सुधा।
कटुक नीम में अहि में विष हो अब तो मन तू सुधर मुधा ॥7॥

भोगी बनकर भोग भोगना भव बंधन का हेतु रहा,
योगी बनकर योग साधना भव सागर का सेतु रहा।
जैसा तुम बोओगे वैसा बीज फलेगा अहो! सखे,
निम्बवृक्ष पर सरस आम्र फल कभी लगे क्या? कहो सखे! ॥8॥

विषयी का बस विषयराग ही भवदुख का वह कारण है,
भविकजनों का धर्म राग ही शिवकारण दुख वारण है।
संध्या में भी लाली होती प्रभात में भी लाली है,
एक सुलाती एक जगाती कितने अन्तर वाली है ॥9॥

जैसा वानर चंचल होता मदिरा पीता पामर है,
बिच्छू ने फिर उसको काटा हुआ वह पागल है।
उससे भी मानव मन की अति चंचलता मानी जाती,
धन्य रहा वह विजित मना जो जिनवर की वाणी गाती ॥10॥

पापार्जन तन मन वच से हो पाप तनक ही तन से हो,
विदित रहे यह सब को, तनसे पाप अधिक वाचन से हो।

कहूँ कहाँ तक मन की स्थिति मैं पाप मेरु सम मन से हो,
करें नियंत्रण मन का हम सब धर्म कार्य बस! मन से हो ॥11॥

दान धर्म में रत होने से शोभा पाता वह भोगी,
ध्यान कर्म में रत होने से शोभा पाता यह योगी।
पात्र बना है निरीह बनना गुण माना है जिनवर ने,
नरक द्वार है इच्छा-ज्वाला हमें कहा है ऋषिवर ने ॥12॥

कृषक कृषी का कार्य करे वह ध्येय धान्य का लाभ रहा,
किन्तु घास का ध्येय रहा तो हास्य पात्र वह आप रहा।
संग सहित-सागारी हो या संग रहित-अनगारी हो,
भवक्षय करने धर्मनिरत हो शिवसुख के अधिकारी हो ॥13॥

महाव्रतों में महा रहा है मुनियों का व्रत शील रहा,
इन्द्रियविषयों में रसना का विजय मुख्य सुखझील रहा।
सब दानों में अभय-दान ही श्रेष्ठ रहा वरदान रहा,
सब धर्मों में धर्म-अहिंसा मान्य रहा मन मान रहा ॥14॥

जीत इन्द्रियां विजितमना है यम संयम ले संयत है,
आत्मध्यान में सहज रूप से वही लीन हो संगत है।
यथा-शीघ्र ही घुल मिल जाती सुनो दूध में शक्कर है,
जीतो इन्द्रिय इसीलिये तुम विषयों का तो चक्कर है ॥15॥

श्रद्धा की मम आँखों में प्रभु किसविध आ अवतार लिया,
कणभर होकर मन यह मेरा गुरुतम तुमको धार लिया॥
विराग हो तुम अमूर्त भी हो मूर्त रहा यह अन्य रहा।
धन्य रहे हो भगवन तुम तो किन्तु भक्त भी धन्य रहा ॥16॥

यदपि मनुज की मोह भाव से सुप्त चेतना होती है।
विराग पहली दृष्टि दूसरी राग रंगिनी होती है॥
बादल दल से गिरती धारा प्रथम समय में विमला हो।
ज्यों ही धरती को आ छूती धूमिल पंकिल समला हो ॥17॥

विषय त्याग से डरते हैं जो मूढ़ रहे वे भूल रहे।
मुक्ति समय पर मिलती इस विध कहते हैं प्रतिकूल रहे॥
मोह-भूत के वशीभूत हो आत्म-बोध से रहित हुये।
कषाय-वश नर क्या नहिं करता पाप पंक में पतित हुये ॥18॥

जननी सुत को ताड़ित करती नेत्र सजल हो सुत रोता।
माँ सहलाती, भूल तुरत सब हँसमुख सुत प्रत्युत होता॥
नेत्र रहे प्रतिशोध-भाव बिन अपलक बालक जैसा हो।
महाभाग्य वह यथाजात यति व्रत का पालक वैसा हो ॥19॥

शब्दों के तो पात्र रहें हैं जग के सारे शास्त्र महा।
मल का कोई पात्र यहाँ है तेरा जड़मय गात्र रहा॥
सुख का पावन पात्र रहा तो शुचितम चेतन मात्र रहा।
ऐसा मन में चिंतन कर लो अपात्र सब सर्वत्र रहा ॥20॥

बल में बालक हूँ किस लायक बोध कहाँ मुझ में स्वामी।
तव गुणगण की स्तुति करने से पूर्ण बनूँ तुम सा नामी॥
गिरि से गिरती सरिता पहले पतली सी ही चलती है।
किन्तु अन्त में रूप बदलती सागर में जा ढलती है ॥21॥

गोमटेश अष्टक

नील कमल के दल-सम जिन के युगल-सुलोचन विकसित हैं,
शशि-सम मनहर सुख कर जिनका मुख-मण्डल मृदु प्रमुदित है।
चम्पक की छवि शोभा जिनकी नम्र नासिका ने जीती,
गोमटेश जिन-पाद-पद्म की पराग नित मम मति पीती॥ 1॥
गोल-गोल दो कपोल जिन के उजल सलिल सम छवि धारे,
ऐरावत-गज की सूण्डा सम बाहुदण्ड उज्ज्वल-प्यारे।
कन्धों पर आ, कर्ण-पाश वे नर्तन करते नन्दन है,
निरालम्ब वे नभ-सम शुचि मम, गोमटेश को वन्दन है॥ 2॥
दर्शनीय तव मध्य भाग है गिरि-सम निश्चल अचल रहा,
दिव्य शंख भी आप कण्ठ से हार गया वह विफल रहा।
उन्नत विस्तृत हिमगिरि-सम है, स्कन्ध आपका विलस रहा,
गोमटेश प्रभु तभी सदा मम तुम पद में मन निवस रहा॥ 3॥
विंध्याचल पर चढ़ कर खरतर तप में तत्पर हो बसते,
सकल विश्व के मुमुक्षु जन के, शिखामणी तुम हो लसते।
त्रिभुवन के सब भव्य कुमुद ये खिलते तुम पूरण शशि हो,
गोमटेश तुम नमन तुम्हें हो सदा चाह बस मन वशि हो॥ 4॥
मृदुतम बेल लताएँ लिपटी पग से उर तक तुम तन में,
कल्पवृक्ष हो अनल्प फल दो भवि-जन को तुम त्रिभुवन में।

तुम पद-पंकज में अलि बन सुर-पति गण करता गुन-गुन है,
गोमटेश प्रभु के प्रति प्रतिपल वन्दन अर्पित तन-मन है॥ 5॥
अम्बर तज अम्बर-तल थित हो दिग अम्बर नहिं भीत रहे,
अंबर आदिक विषयन से अति विरत रहे भव भीत रहे।
सर्पादिक से घिरे हुए पर अकम्प निश्चल शैल रहे,
गोमटेश स्वीकार नमन हो धुलता मन का मैल रहे॥ 6॥
आशा तुम को छू नहिं सकती समदर्शन के शासक हो,
जग के विषयन में वांछा नहिं दोष मूल के नाशक हो।
भरत-भ्रात में शल्य नहीं अब विगत-राग हो रोष जला,
गोमटेश तुम में मम इस विध सतत राग हो होत चला॥ 7॥
काम-धाम से धन-कंचन से सकलसंग से दूर हुए,
शूर हुए मद मोह-मार कर समता से भरपूर हुए।
एक वर्ष तक एक थान थित निराहार उपवास किये,
इसीलिए बस गोमटेश जिन मम मन में अब वास किये॥ 8॥

नेमीचन्द्र गुरु ने किया प्राकृत में गुणगान।
गोमटेश थुति अब किया भाषा-मय सुख खान॥ 1॥
गोमटेश के चरण में नत हो बारम्बार।
विद्यासागर कब बनूँ भवसागर कर पार॥ 2॥

शीतलनाथ स्तवन

ना तो मलयाचल चंदन औ चन्द्र चान्दनी शीतल है।
शीतल गंगा का भी जल नहिं मणिमय माला शीतल है॥
हे मुनिवर तव वचन-किरण में प्रशम भाव-मय नीर भरा।
शीतलतम है, बुधजन जिसका सेवन करते पीर हरा॥ १॥
विषय-सौख्य की चाह-दाह से क्लान्त किया था तप्त किया।
निज के मन से ज्ञान-नीर से शान्त किया तुम तृप्त किया।
वैद्य-राज ज्यों मंत्र-शक्ति से जहर शक्ति को हरता है।
जहर-दाह से मूर्च्छित निज के तन को सुशान्त करता है॥ २॥
जीवन की औ काम सौख्य की तृष्णा के जो नौकर हैं।
जड़ मति दिन-भर श्रम कर थकते रात बिताते सोकर हैं॥
शुचि-तम निज आतम में तुम तो निशि दिन निश्चल जाग रहे।
यही आर्य! अनिवार्य कार्य तव, प्रमाद रिपु-सम त्याग रहे॥३॥
सुर-सुख की, सुत-धन की, धन की तृष्णा जिनके मन में है।
ऐसे ही कुछ जड़ जन, तापस, बन तप तपते वन में हैं॥
किन्तु, जनन-मृति-जरा मिटाने, समधी बन यम धार लिया।
मन वच तन की क्रिया मिटा दी, तुमने भव-दधि पार किया॥४॥
धवलित केवलज्ञान-ज्योति हो जन्म-रहित दुख सर्व हरें।
आप कहाँ ये अन्य कहाँ जड़ अल्प ज्ञान ले गर्व करें॥
शिव-सुख के अभिलाषी बुधजन अतः सदा तव गुण गाते।
शीतल प्रभु मुझ शीतल कर दो तुम्हें भजे मम मन तातैं॥५॥

शीतल चन्दन है नहीं शीतल हिम ना नीर।
शीतल जिन! तव मत रहा शीतल,हरता पीर॥१॥
सुचिर काल से मैं रहा मोह-नींद से सुप्त।
मुझे जगा कर, कर कृपा प्रभो करो परितृप्त॥२॥

पार्श्वनाथ स्तवन

जल वर्षाते घने बादल काले-काले डोल रहे।
झंझा चलती बिजली कड़की घुमड़-घुमड़ कर बोल रहे॥
पूर्व वैर-वश कमठ देव हो इस विध तुमको कष्ट दिया।
किन्तु ध्यान में अविचल प्रभु हो घाति कर्म को नष्ट किया॥ 1॥
द्युति मय बिजली-सम पीला निज फण का मण्डप बना लिया।
नाग इन्द्र तब कष्ट मिटाने तुम पर समुचित तना दिया॥
दृश्य मनोहर तब वह ऐसा विस्मयकारी एक बना।
संध्या में पर्वत को ढकता समेत बिजली मेघ घना॥ 2॥
आत्म ध्यान-मय कर में खर तर खड्ग आपने धार लिया।
मोहरूप निज दुर्जय रिपु को पल-भर में बस मार दिया॥
अचिन्त्य-अद्भुत आर्हत पद को फलतः पाया अघहारी।
तीन लोक में पूज्यनीय जो अतिशयकारी अतिभारी॥ 3॥
मनमाने कुछ तापस ऐसे तप करते थे वनवासी।
पाप-रहित तुमको लख, इच्छुक तुम-सम बनने अविनाशी॥
हम सबका श्रम विफल रहा यों समझ सभी वे विकल हुए।
शम-यम-दम-मय सदुपदेश सुन तब चरणन में सफल हुए॥ 4॥
समीचीन विद्या-तप के प्रभु रहे प्रणेता वरदानी।
उग्र वंश मय विशाल नभ के दिव्य सूर्य, पूरण ज्ञानी॥
कुपथ निराकृत कर भ्रमितों को पथिक सुपथ के बना दिये।
पार्श्वनाथ मम पास वास बस, करो देर अब बिना किये॥ 5॥

इष्ट प्रार्थना

हमारे कष्ट मिट जाये, नहीं यह भावना स्वामी।
डरे न संकटों से हम, यही है भावना स्वामी ॥1 ॥
हमारा भार घट जाये, नहीं यह भावना स्वामी।
किसी पर भार न हों हम, यही है भावना स्वामी ॥2 ॥
फले आशा सभी मन की, नहीं यह भावना स्वामी।
निराशा हो न अपने से, यही है भावना स्वामी ॥3 ॥
बढ़े धन सम्पदा भारी, नहीं यह भावना स्वामी।
रहे संतोष थोड़े में, यही है भावना स्वामी ॥4 ॥
दुःखों में साथ दे कोई, नहीं यह भावना स्वामी।
बने सक्षम स्वयं ही हम, यही है भावना स्वामी ॥5 ॥
दुःखीं हो दुष्ट जन सारे, नहीं यह भावना स्वामी।
सभी दुर्जन बने सज्जन, यही है भावना स्वामी ॥6 ॥
मनोरंजन हमारा हो, नहीं यह भावना स्वामी।
मनोभंजन हमारा हो,यही है भावना स्वामी ॥7 ॥
रहे सुख शान्ति जीवन में, नहीं यह भावना स्वामी।
न जीवन में असंयम हो, यही है भावना स्वामी ॥8 ॥
फले फूले नहीं कोई, नहीं यह भावना स्वामी।
सभी पर प्रेम हो उर में,,यही है भावना स्वामी ॥9 ॥
दुखों में आपको ध्यायें, नहीं यह भावना स्वामी।
कभी न आपको भूलें, यही है भावना स्वामी ॥10 ॥

पंचमहागुरुभक्ति

सुरपति शिर पर किरीट धारा, जिसमें मणियां कई हजारा।
मणि की द्युतिजल से धुलते हैं, प्रभु पद-नमता सुख फलते हैं॥ 1 ॥

सम्यक्त्वादिक वसु-गुण धारे, वसु-विध विधि रिपुनाशन हारे।
अनेक - सिद्धों को नमता हूँ, इष्ट-सिद्धि पाता समता हूँ॥ 2 ॥

श्रुत-सागर को पार किया है, शुचि संयम का सार लिया है।
सूरीश्वर के पदकमलों को, शिर पर रख लूं दुख-दलनों को॥ 3 ॥

उन्मार्गी के मद-तम हरते, जिनके मुख से प्रवचन झरते।
उपाध्याय ये सुमरण करलूं, पाप नष्ट हो सु-मरण करलूं॥ 4 ॥

समदर्शन के दीपक द्वारा, सदा प्रकाशित बोध सुधारा।
साधु चरित के ध्वजा कहाते, दे-दे मुझको छाया तातें॥ 5 ॥

विमल गुणालय-सिद्ध जिनों को, उपदेशक मुनि-गणी गणों को।
नमस्कार पद पंच इन्हीं से, त्रिधा नमूं शिव मिले इसी से॥ 6 ॥

सिद्ध शुद्ध हैं जय अरहन्ता, गणी पाठका जय ऋषि संता।
करें धरा पर मंगल साता, हमें बना दें शिव सुख धाता॥ 7 ॥

नमस्कर वर मन्त्र यही है, पाप नसाता देर नहीं है।
मंगल-मंगल बात सुनी है, आदिम मंगल-मात्र यही है॥ 8 ॥

सिद्धों को जिनवर चन्द्रों को, गण नायक पाठक वृन्दों को।
रत्नत्रय को साधु जनों को, वन्दूं पाने उन्हीं गुणों को॥ 9 ॥

सुरपति चूड़ामणि-किरणों से,ललित सेवित शतों दलों से।
पांचो परमेष्ठी के प्यारे, पादपद्म ये हमें सहारे ॥10॥

महाप्रातिहार्यों से जिनकी, शुद्ध गुणों से सुसिद्ध गण की।
अष्टमातृकाओं से गणि की, शिष्यों से उपदेशक गण की।
वसु विध योगांगों से मुनि की, करूँ सदा थुति शुचि से मन की ॥11॥

पंचमहागुरु भक्ति का करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करूँ!, ले प्रभु तव संसर्ग॥ 12॥

लोक शिखर पर सिद्ध विराजे अगणित गुणगण मण्डित हैं।
प्रातिहार्य आठों से मण्डित जिनवर पण्डित-पण्डित हैं॥
पंचाचारों रत्नत्रय से शोभित हो आचार्य महा।
शिव पथ चलते और चलाते औरों को भी आर्य यहाँ॥13॥

उपाध्याय उपदेश सदा दे चरित बोध का शिव पथ का।
रत्नत्रय पालन में रत हो साधु सहारा जिनमत का॥
भाव भक्ति से चाव भक्ति से निर्मल कर-कर निज मन को।
वंदूं पूजूं अर्चन कर लूं नमन करूँ मैं गुरुगण को॥14॥

कष्ट दूर हो कर्म चूर हो बोधि लाभ हो सद्गति हो।
वीर-मरण हो जिनपद मुझको मिले सामने सन्मति ओ !॥15॥

योगिभक्ति

नरक-पतन से भीत हुये हैं जाग्रत-मति हैं मथित हुये
जनन-मरण मय शत-शत रोगों से पीड़ित हैं व्यथित हुये।
बिजली बादल-सम वैभव है जल-बुदबुद-सम जीवन है
यूं चिन्तन कर प्रशम हेतु मुनि वन में काटे जीवन है॥1॥
गुप्ति-समिति-व्रत से संयुत जो मन शिव-सुख की ओर रहा
मोहभाव के प्रबल-पवन से जिनका मन ना डोल रहा।
कभी ध्यान में लगे हुए तो श्रुत-मन्थन में लीन कभी
कर्म-मलों को धोना है सो तप करते स्वाधीन सुधी॥2॥
रवि-किरणों से तपी शिला पर सहज विराजे मुनिजन हैं
विधि-बन्धन को ढीले करते जिनका मटमैला तन है।
गिरि पर चढ़ दिनकर के अभिमुख मुख करके हैं तप तपते
ममत्व मत्सर मान रहित हो बने दिगम्बर-पथ नपते॥3॥
दिवस रहा हो रात रही हो बोधामृत का पान करें
क्षमा नीर से सिंचित जिनका पुण्यकाय छविमान अरे !
धरे छत्र-संतोष भाव के सहज छांव का दान करें
यूं सहते मुनि तीव्र-ताप को ज्ञानोदय गुणगान करें॥4॥
मोर कण्ठ या अलि-सम काले इन्द्र धनुष युत बादल हैं
गरजे बरसे बिजली तड़की झंझा चलती शीतल है।
गगन दशा को देख निशा में और तपोधन तरुतल में
रहते सहते कहते कुछ ना भीति नहीं मानस - तल में॥5॥
वर्षा ऋतु में जल की धारा मानो बाणों की वर्षा
चलित चरित से फिर भी कब हो करते जाते संघर्षा
वीर रहे नर-सिंह रहे मुनि परिषह रिपु को घात रहे
किन्तु सदा भव-भीत रहे हैं इनके पद में माथ रहे॥6॥

अविरल हिमकण जल से जिनकी काय-कान्ति ही चली गई
सॉय-सॉय कर चली हवायें, हरियाली सब जली गई।
शिशिर तुषारी घनी निशा को व्यतीत करते श्रमण यहाँ
और ओढ़ते धृति-कम्बल हैं, गगन तले भूशयन अहा ! ॥7 ॥
एक वर्ष में तीन योग ले बने पुण्य के वर्धक हैं
बाह्याभ्यन्तर द्वादश-विध तप तपते हैं मद-मर्दक हैं।
परमोत्तम आनन्द मात्र के प्यासे भदन्त ये प्यारे
आधि-व्याधि औ उपाधि-विरहित समाधि हम में बस डारे ॥8 ॥
ग्रीष्मकाल में आग बरसती गिरि-शिखरों पर रहते हैं।
वर्षा-ऋतु में कठिन परीषह तरुतल रहकर सहते हैं।
तथा शिशिर हेमन्त काल में बाहर भू-पर सोते हैं
वन्द्य साधु ये वन्दन करता, दुर्लभ-दर्शन होते हैं ॥9 ॥

दोहा

योगीश्वर सद्भक्ति का करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करूँ! ले प्रभु तव संसर्ग ॥10 ॥

अर्ध सहित दो द्वीप तथा दो सागर का विस्तार जहाँ
कर्म-भूमियां पन्द्रह जिनमें संतों का संचार रहा।
वृक्षमूल-अभ्रावकाश औ आतापन का योग धरें
मौन धरें वीरासन आदिक का भी जो उपयोग करें ॥11 ॥
बेला तेला चोला छहला पक्ष मास छह मास तथा
मौन रहें उपवास करें है करें न तन की दास कथा।
भक्ति भाव से चाव शक्ति से निर्मल कर कर निज मन को
वंदूं पूजूं अर्चन कर लूं नमन करुं इन मुनि जन को ॥12 ॥
कष्ट दूर हो कर्म चूर हो बोधि लाभ हो सद्गति हो
वीर मरण हो जिनपद मुझको मिले सामने सन्मति ओ ! ॥

शान्तिभक्ति

नहीं स्नेह वश तव पद शरणा गहते भविजन पामर हैं
यहाँ हेतु है बहु दुःखों से भरा हुआ भवसागर है।
धरा उठी जल ज्येष्ठ काल है भानु उगलता आग कहीं
करा रहा क्या छांव शशी के जल के प्रति अनुराग नहीं? ॥1 ॥
कुपित कृष्ण अहि जिसको डसता फैला हो वह विष तन में
विद्या औषध हवन मन्त्र जल से मिट सकता है क्षण में।
उसी भांति जिन तुम पद-कमलों की थुति में जो उद्यत है
पाप शमन हो रोग नष्ट हो चेतन तन के संगत है ॥2 ॥
कनक मेरु आभा वाले या तप्त कनक की छवि वाले
हे जिन ! तुम पद नमते मिटते दुस्सह दुख हैं शनि वाले।
उचित रहा रवि उषाकाल में उदार उर ले उगता है
बहुत जनों के नेत्रज्योति-हर सघन तिमिर भी भगता है ॥3 ॥
सब पर विजय बना तना है नाक-मरोड़ा दम तोड़ा
देवों देवेन्द्रों को मारा नरपति को भी ना छोड़ा।
दावा बन कर काल घिरा है उग्र रूप को धार घना
कौन बचावे? हमें कहो जिन !तव पद थुति नद-धार बिना ॥4 ॥
लोकालोकालोकित करते ज्ञानमूर्ति हो जिनवर हे !
बहुविध मणियां जड़ी दण्ड में तीन छत्र शित तुम सर पे।
हे जिन ! तव पद-गीत धुनी सुन रोग मिटे सब तन मन के
दाड़ उघाड़े सिंह दहाड़े गजमद गलते वन-वन के ॥5 ॥
तुम्हें देवियां अथक देखती विभव मेरु पर तव गाथा
बाल भानु की आभा हरता मण्डल तव जन जन भाता।

हे जिन ! तव पद थुति से ही सुख मिलता निश्चय अटल रहा
निराबाध नित विपुल सार है, अचिंत्य अनुपम अटल रहा ॥6 ॥
प्रकाश करता प्रभा पुंज वह भास्कर जब तक न उगता
सरोवरों में सरोज दल भी तब तक खिलता ना जगता।
जिसके मानस सर में जब तक जिनपद पंकज ना खिलताा
पाप-भार का वहन करे वह भ्रमण भवों में ना टलता ॥7 ॥
प्यास शान्ति की लगी जिन्हें है तव पद का गुण गान किया।
शान्तिनाथ जिन शान्त भाव से परम शान्ति का पान किया
करुणाकर ! करुणा कर मुझको प्रसन्नता में निहित करो
भक्तिमग्न है भक्त आपका दृष्टि-दोष से रहित करो ॥8 ॥
शरद शशी सम शीतल जिनका नयन मनोहर आनन है
पूर्ण शील के व्रत संयम के अमित गुणों के भाजन हैं।
शत वसु लक्षण से मण्डित है जिनका औदारिक तन है
नयन कमल है जिनवर जिनके शान्तिनाथ को वन्दन है ॥9 ॥
चक्रधरों में आप चक्रधर पंचम हैं गुण मंडित हैं
तीर्थकरों में सोलहवें जिन सुर-नरपति से वंदित हैं।
शान्तिनाथ हो विश्वशान्ति हो भांति-भांति की भ्रांति हरो
प्रणाम ये स्वीकार करो लो किसी भांति मुझ कांति भरो ॥10 ॥
दुंदभि बजते पुष्प बरसते, आतप हरते चामर ढुरते।
भामंडल की आभा भारी, सिंहासन की छटा निराली ॥11 ॥
अशोक तरु सो शोक मिटाता, भविक जनों से ढोक दिलाता।
योजन तक जिन घोष फैलता, समवसरण में तोष तैरता ॥12 ॥
झुका-झुका कर मस्तक से, मैं शान्तिनाथ को नमन करुं
देव जगत भूदेव जगत से वन्दित पद में रमण करुं।

चराचरों को शान्तिनाथ वे परम शान्ति का दान करें
थुति करने वाले मुझमें भी परम तत्त्व का ज्ञान भरें ॥13 ॥
पहने कुण्डल मुकुट हार हैं सुर हैं सुरगण पालक हैं
जिनसे निशि दिन पूजित अर्चित जिनपद भवदधि तारक हैं।
विश्व विभासक-दीपक हैं जिन विमलवंश के दर्पण हैं
तीर्थंकर हो शान्ति विधायक यही भावना अर्पण है ॥14 ॥
भक्तों को भक्तों के पालन-हारों को औ यक्षों को
यतियों मुनियों मुनीश्वरों को तपोधनों के दक्षों को।
विदेश-देशों उपदेशों को पुरों गोपुरों नगरों को
प्रदान कर दें शान्ति जिनेश्वर विनाश कर दें विघ्नों को ॥15 ॥
क्षेम प्रजा का सदा बली हो धार्मिक हो भूपाल फले
समय-समय पर इन्द्र बरस ले व्याधि मिटे भूचाल टले।
अकाल दुर्दिन चोरी आदिक कभी रोग ना हो जग में
धर्मचक्र जिनका हम सबको सुखद रहे सुर शिव मग में ॥16 ॥
ध्यान शुक्ल के शुद्ध अनल से घातिकर्म को ध्वस्त किया
पूर्णबोध-रवि उदित हुआ सो भविजन को आश्वस्त किया।
वृषभदेव से वर्धमान तक चार-बीस तीर्थंकर हैं
परम शान्ति की वर्षा जग में यहाँ करें क्षेमंकर हैं ॥17 ॥

दोहा

पूर्ण शान्ति वर भक्ति का करके कायोत्सर्ग
आलोचन उसका करुं! ले प्रभु तव संसर्ग ॥18 ॥

पंचमहाकल्याणक जिनके जीवन में हैं घटित हुये
समवसरण में महा दिव्य वसु प्रातिहार्य से सहित हुये।
नारायण से रामचन्द्र से छहखण्डों के अधिपति से

यति अनगारों ऋषि मुनियों से पूजित जो हैं गणपति से ॥19॥
वृषभदेव से महावीर तक महापुरुष मंगलकारी
लाखों स्तुतियों के भाजन हैं तीस-चार अतिशयधारी।
भक्ति भाव से चाव शक्ति से निर्मल कर कर निज मन को
वन्दूं पूंजूं अर्चन करलूं नमन करुं मैं जिनगण को ॥20॥
कष्ट दूर हो कर्म चूर हो बोधि लाभ हो सद्गति हो
वीर-मरण हो जिनपद मुझको मिले सामने सन्मति ओ ! ॥21॥

♦♦♦♦

आत्म कीर्तन

हूँ स्वतंत्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता द्रष्टा आतमराम॥ टेक॥
मैं वह हूँ जो हैं भगवान्, जो मैं हूँ वह हैं भगवान्।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहँ राग-वितान॥ 1॥
मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति-सुख-ज्ञाननिधान।
किन्तु आश वश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान॥ 2॥
सुख-दुःख-दाता कोई न आन, मोह राग रुष दुख की खान।
निज को निज, पर को पर जान, फिर दुख का नहिं लेश निदान॥3॥
जिन, शिव, ईश्वर, ब्रह्मा, राम, विष्णु, बुद्ध, हरि जिसके नाम।
राग त्यागि पहुँचूँ निज धाम, आकुलता का फिर क्या काम॥ 4॥
होता स्वयं जगत-परिणाम, मैं जग का करता क्या काम।
दूर हटो पर-कृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूँ अभिराम॥ 5॥

गुरुअर्चना

दोहा

दया करो संकट हरो, विद्या गुरु भगवान।
मुझे भरोसा आप पर, रखना मेरा ध्यान॥
गिरे न मेरा मन कभी, रहे माथ पर हाथ।
मैं बालक डरपोक हूँ, रखना मुझको साथ।

गुरु ही मेरे अंग हैं, गुरु ही मेरे प्राण।
यह जीवन गुरु के बिना, जैसा इक श्मशान॥
शिष्य भले ही दूर हो, रखते हैं गुरु ध्यान।
अंतरंग के भाव से, देते हैं वरदान॥

गुरु हैं जग में कल्पतरु, फल उपदेश महान।
जो भी खाता है इसे, बनता वह भगवान॥
गुरु गंधोदक से मिटे, तन मन के सब रोग।
भक्ति भाव के साथ ही, ले लो सारे लोग॥

मेरे गुरुवर मेघ हैं, बच्चे हम सब मोर।
नाच रहे हैं प्यार से, देखत इनकी ओर॥
विद्यासागर चरण की, जिसे मिली है धूल।
उसे मिला है जगत में, मन वांछित फलफूल॥

मन वच तन से कर रहे, जो निज पर उद्धार।
ऐसे विद्या संत को, प्रणाम बारम्बार॥
विद्यासागर में भरे, रत्न अनंतानंत।
इन्हें प्राप्त कर बन रहे, संत लोक श्रीमंत॥

दुर्जन के दुर्गुण मिटे, रोगी के सब रोग।
साधु साधे साध्य को, पा गुरुवर का योग॥

धर्म धुरंधर गुरु रहे, करुणा के अवतार।
भविजन को भव-सिन्धु में, ये ही तारणहार॥

गुरु ही मेरे त्राण हैं, गुरु ही मेरे प्राण।
गुरु ही मेरी शान हैं, गुरु ही मम पहचान॥

विद्यासागर गुरु मिले, हमें भाग्य से आज।
भवसागर से तैरने, ये हैं परम जहाज॥

गुरु स्वाती की बूंद हैं, शिष्य सीप सम जान।
गुरु आज्ञा संयोग है,मोती केवलज्ञान॥

मैं पूजूँ गुरुदेव को, मम उर में रख पाद।
जब तक शिव सुख ना मिले, करूँ इन्हीं को याद॥

भव आतप से जल रहे, थे हम सब के प्राण।
विद्यासागर नीर से, मिला सु जीवन दान॥

मेरे गुरु के पूज्य हैं, गज-रेखा के पैर।
हिंसक पशु भी छोड़ते, इत आकर सब वैर॥

विद्यासागर के चरण, जग में पूज्य महान।
शरणागत को शरण हैं, बनने को भगवान॥

गुरुवर ने जो भी दिया, मुझ को यह आधार।
युगों युगों तक मैं नहीं, भूलूँगा उपकार॥

विद्यासागर सूर्य हैं, शिष्य किरण सम जान।
इनके दर्शन मात्र से, मिटता तम अज्ञान॥

विद्या गुरुवर ने दिया, जन-जन को यह सीख।
निज में निधी अपार है, मत मांगों रे भीख॥

श्रावक प्रतिक्रमण

गुरुदेव दया करके, मुझे जग से छुड़ा देना।
पा जाऊँ मैं आतम को, वो राह दिखा देना॥
करुणानिधि नाम तेरा, करुणा को जगाओ तुम,
मैत्री के भावों को, हे नाथ जगा दो तुम।
प्रतिपल समता में रहूँ, संवर ये सिखा देना॥

गुरुदेव दया.....

लाखों को तारा है, मुझको भी तारो तुम,
मैं शरण पड़ा तेरी, मेरी ओर निहारो तुम।
मेरा जनम मरण छूटे, वो भक्ति जगा देना॥

गुरुदेव दया.....

मैं अनादि से घायल हूँ, उपचार कराओ तुम,
हो जाऊँ निरोग सदा, औषध वो पिलाओ तुम।
पा जाऊँ परम पद को, वो राह चला देना॥

गुरुदेव दया.....

टूटी हुई वीणा के सब, तार मिला दो तुम,
गाऊँ मैं मधुर संगीत, वो साज बना दो तुम।
ये गीत जो बिछुड़ा है, गायक से मिला देना॥

गुरुदेव दया.....

बहती हुई सरिता की, आवाज मिटाओ तुम,
अंतस में हे स्वामी, ज्योति प्रकटाओ तुम।
ये बूँद जो बिछुड़ी है, सागर से मिला देना॥

गुरुदेव दया.....

हे भगवन् ! जिनेन्द्र देव के अनुसार जिनधर्म का पालन करते हुए ग्रहण किये हुए नियमों में / व्रतों में जाने अनजाने में मन वचन काय की चंचलता से जो भी दोष लगे हों उन दोषों की शुद्धि एवं मन की पवित्रता हेतु भावशुद्धि पूर्वक प्रतिक्रमण करता हूँ।

चार घातिया कर्मों से रहित अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख एवं अनंत वीर्य रूप अनंत चतुष्टय से सहित समवशरण आदि दिव्य वैभव से युक्त अरिहंत परमात्मा को मेरा बारम्बार नमस्कार हो नमस्कार हो नमस्कार हो।

ज्ञानावरणादि आठ कर्मों रहित, आठ गुणों से सहित, लोक के अग्रभाग में स्थित, शरीर से रहित, अशरीरी सिद्ध परमात्मा को मेरा नमस्कार हो नमस्कार हो नमस्कार हो।

ज्ञानाचार, दर्शनाचार, तपाचार, वीर्याचार, चारित्राचार रूप पंचाचारों से सहित, दीक्षा और प्रायश्चित आदि देने में कुशल, मुनि संघ के नायक, आचार्य परमेष्ठी को मैं बारम्बार स्तुति करता हूँ, वंदना करता हूँ, उन्हें मेरा नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो।

मुनि शिष्यों को पढ़ाने वाले रत्नत्रय से विशुद्ध उपाध्याय परमेष्ठी को मेरा नमस्कार हो नमस्कार हो नमस्कार हो।

अठ्ठाईस मूलगुणों के पालन करने में निरत, परिग्रह से रहित, ज्ञान, ध्यान, तप में लीन रहने वाले साधु परमेष्ठी को मेरा नमस्कार हो नमस्कार हो नमस्कार हो।

हे भगवन् ! मैं पापी हूँ, दुरात्मा हूँ, अल्पबुद्धि वाला हूँ, रागद्वेष से युक्त कषायी हूँ।

हे भगवन् ! मैंने दुष्ट कार्य किए, दुष्ट चिंतन किया, दुष्ट

भाषण किया, अतः भीतर ही भीतर पश्चाताप की आग में जल रहा हूँ।

हे भगवन् ! आज तक मेरे मन में अहिंसा आदि धर्म पालन करने की भावनाएँ नहीं हुईं। मैं रात-दिन क्रोध रूपी अग्नि में जलता रहा हूँ। मैं निरंतर लोभ रूपी सर्प के द्वारा काटा गया हूँ।

हे प्रभो ! मैंने आज तक दीनों को अथवा सत्पात्रों को दान नहीं दिया, सत् चारित्र को अंगीकार नहीं किया है, मैंने कभी भी तप का आचरण नहीं किया और मैं निरंतर माया जाल, छलकपट करने में लीन रहा हूँ।

हे भगवन् ! मैं आपके पास आने में संकोच करता हूँ, मुझे डर लगता है। हे प्रभो वास्तव में हमारे जैसे नरों का जन्म ही व्यर्थ है। किन्तु फिर भी प्रभु आप दयालु हैं, करुणा निधान हैं, संसार दुःख के वैद्य हैं, अनुपम कृपा अवतार हैं, परम पिता परमात्मा हैं। एक अज्ञानी बालक जिस तरह अपने माता-पिता के सामने अपनी तोतली भाषा में अपने हृदय की बात को ज्यों का त्यों बिना किसी छल-कपट के कह देता है, उसी प्रकार मैं भी अपने हृदय का हाल अपनी बुराई दुर्गुण अपने दोषों को आपसे विनय से प्रीतिपूर्वक कह रहा हूँ। मुझे विश्वास है आप निश्चित ही मुझ अज्ञानी पर कृपा करेंगे।

तीर्थंकर की स्तुति एवं कायोत्सर्ग

सौ इन्द्रों से पूजित श्री ऋषभ नाथ भगवान, तीन लोक को प्रकाशित करने वाले श्री अजितनाथ भगवान, संसार प्राणियों को सुख के कारणभूत श्री सम्भवनाथ भगवान, मुनि गणों में श्रेष्ठ आदरणीय श्री अभिनन्दननाथ भगवान, कर्म रूपी शत्रु का नष्ट करने वाले सद्बुद्धि प्रदाता श्री सुमतिनाथ भगवान, अंतरंग एवं बहिरंग लक्ष्मी से सुशोभित

श्री पद्मप्रभ भगवान,पाँच इन्द्रियों को दमन करने वाले श्रीसुपार्श्वनाथ भगवान, चंद्रमा के समान उज्ज्वल गुणों से युक्त श्री चन्द्रप्रभ भगवान, तीन लोक में प्रसिद्ध श्रीपुष्पदन्त भगवान, तृष्णा रूपी अग्नि को शांत करने वाले श्री शीतलनाथ भगवान, भव्य प्राणियों का कल्याण करने वाले श्री श्रेयांसनाथ भगवान, चक्रवर्ती आदि मनुष्यों से पूजित श्री वासुपूज्यभगवान,निर्मल मोक्ष पद को देने वाले श्री विमलनाथ भगवान, अनंत गुणों के धारी श्री अनन्तनाथ भगवान,दया धर्म के उपदेशक श्री धर्मनाथ भगवान, शांति के प्रदाता श्री शांतिनाथ भगवान,कुंथु आदि छोटे-छोटे जीवों के रक्षक श्री कुन्थुनाथ भगवान, श्रमणों के नायक श्री अरनाथ भगवान, मोहरूपी योद्धा को नष्ट करने वाले श्री मल्लिनाथ भगवान, मुक्ति के मार्गरूप मुनिव्रत का उपदेश करने वाले श्री मुनिसुव्रतनाथ भगवान, अनाथों के नाथ श्री नमिनाथ भगवान, हरिवंश के तिलक बाल ब्रह्मचारी श्री नेमिनाथ भगवान, घोर उपसर्ग पर विजय प्राप्त करने वाले श्री पार्श्वनाथ भगवान, वर्तमान शासन नायक तीन लोक का हित करने वाले श्री महावीर भगवान की मन से, वचन से और काय से मैं निरंतर स्तुति करता हूँ। जो मेरे द्वारा कीर्तित, वन्दित और पूजित है, लोक में उत्तम है तथा कृतकृत्य है ऐसे जिनेन्द्र चौबीस तीर्थंकर भगवान मेरे लिये आरोग्य लाभ, ज्ञान लाभ, समाधि और बोधि प्रदान करें।

श्रद्धावान्, विवेकवान् और क्रियावान् पुरुष सच्चा श्रावक कहलाता है। हे प्रभु ! मैंने वीतराग प्रभु को छोड़कर अन्य रागी-द्वेषी देवी-देवताओं की आराधना की हो, लोभ, भय, ख्याति, पूजा, धन-पुत्रादि की चाह के वशीभूत हो, मिथ्यात्व का पोषण किया हो। आरम्भ परिग्रह में लीन गुरुओं की आराधना, सेवा की हो।

हे भगवन् ! आत्मिक सुख का साक्षात् कारणभूत जिनधर्म में यदि मेरी श्रद्धा न रही हो, श्रद्धा में मलिनता उत्पन्न हुई हो तो हे प्रभु! मैं आज साक्षात् आपके सामने क्षमा मांगता हूँ, मेरे वे दुष्कृत्य मिथ्या होवे, मेरी जिनधर्म में दृढ़ता हो, वीतरागी, निष्परिग्रही, दया धर्म के उपदेशक देवशास्त्र गुरु के प्रति आस्था, श्रद्धा, भक्ति में जो कुछ भी दोष लगे हों, वह सभी दोष मिथ्या होवें, मैं पश्चाताप करता हूँ।

हे प्रभु! मैंने अज्ञान एवं अविवेक के कारण अभक्ष्य पदार्थों का सेवन किया हो, दूसरों को कराया हो, करने वालों की अनुमोदना की हो तो मेरा वह दुष्कृत्य मिथ्या हो।

हे प्रभु ! घोर दुःखों अर्थात् नरक के कारणभूत सात प्रकार के व्यसन माँस सेवन, मदिरा सेवन, जुआँ खेलना, चोरी करना,परस्त्री सेवन, वेश्यागमन एवं शिकार खेलना इन व्यसनों को मैंने किया हो, कराया हो, करने की अनुमोदना की हो, वह मेरा दुष्कृत्य मिथ्या होवे, मैं पश्चाताप करता हूँ।

हे प्रभु ! मैंने राग के वशीभूत हो धर्म का बहुमान न करते हुए बुरी संगति से अज्ञान के वशीभूत होकर नरक का द्वार, दुर्गति का कारणभूत, अनेक त्रस एवं स्थावर जीवों की हिंसा का साधन, रात्रि में अन्न-जल का सेवन किया हो, कराया हो, करने वालों की अनुमोदना की हो वह सब पाप मिथ्या होवे मैं पश्चाताप करता हूँ।

हे प्रभु ! मैंने अभिमान और अज्ञान के कारण धर्म का पालन करते में लज्जा का अनुभव करते हुये रसना इन्द्रिय के वशीभूत हो बिना छने जल का प्रयोग किया हो, कराया हो, करने वाले की अनुमोदना की हो, होटल आदि में निर्मित अभक्ष्य खाद्य सामग्री का मन वचन काय से सेवन किया हो, कराया हो, करने वालें की अनुमोदना

की हो वह सब पाप मिथ्या होवे। इस दुष्कृत्य के लिये मैं पश्चाताप करता हूँ।

हे प्रभु ! मैंने बहुत दिन पहले बने हुए त्रस जीवों के कलेवर ऐसे अचार, मुरब्बा का सेवन किया हो। साबूदाना, ब्रेड, पापुलर च्वाइंगम आदि का सेवन किया हो, कराया हो, करने वाले की अनुमोदना की हो वह सब पाप मिथ्या होवे। इस दुष्कृत्य के लिये मैं पश्चाताप करता हूँ।

हे प्रभु ! खोटी संगति के कारण लत पड़ने के कारण सभी को अनिष्ट लगने वाले, शरीर को हानिकारक, संसार कलह का कारण, धर्म को नष्ट करने वाली तम्बाखू, जर्दा, पान-मसाला, अफीम, चिलम, गांजा, शराब, चरस अन्य नशीली दवाईयों का, सिगरेट, बीड़ी आदि का धूम्रपान का सेवन किया हो, कराया हो, करने वाले की अनुमोदना की हो वह सब पाप मिथ्या होवे। इस दुष्कृत्य के लिये मैं पश्चाताप करता हूँ।

हे प्रभु ! मैंने अपने शरीर के शृंगार के लोभ के वशीभूत होकर घोर नरक दुःखों के कारण , तिर्यञ्च योनि में जन्म के कारणभूत हिंसात्मक प्रसाधन सामग्री का प्रयोग जैसे शैम्पू, क्रीम-पॉवडर अनेक प्रकार के सुगंधित तेल, लिपिस्टक, नेल पॉलिश, परफ्यूम, चमड़े के बने जूते, बेल्ट, बैग, पर्स आदि का प्रयोग किया हो, कराया हो, करने वाले की अनुमोदना की हो वह सब पाप मिथ्या होवे। मेरा वह दुष्कृत्य मिथ्या हो मैं पश्चाताप करता हूँ।

हे प्रभु ! मैंने व्यापार, गृहसम्बन्धी कार्यों के निमित्त एक इन्द्रिय जीव (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि व वनस्पति), दो इन्द्रिय(इल्ली, शंख, सीप, कृमि आदि), तीन इन्द्रिय जीव (चींटी, खटमल आदि),

चार इन्द्रिय जीव (मक्खी, मच्छर, पतंगा आदि), पंचेन्द्रिय जीव गाय, मनुष्यादि जीवों को पीड़ा पहुँचाई हो, उनको मारा हो, उनका वध किया हो, उनका छेदन-भेदन आदि किसी भी तरह दुःख पहुँचाया हो, वह सब पाप मिथ्या होवे, मैं पश्चाताप करता हूँ।

हे प्रभु ! मेरे चलने-फिरने में, दौड़ने में, वस्तु उठाने-रखने में, मूत्र-मल, कफ आदि विकारों का उत्सर्ग करने में, सोने में, करवट लेने में, झाड़ू-पोंछा लगाने में, भोजन बनाने में, अग्नि जलाने में, कपड़े धोने में, सर्फ का पानी नाली में डालने में, भूमि खोदने में, स्कूटर-मोटर-गाड़ी आदि चलाने में जीवों को मेरे द्वारा पीड़ा पहुँची हो, उनका घात हुआ हो तो हे प्रभु ! मैं आपके समक्ष उन दोषों की शुद्धि हेतु आलोचना, निंदा करता हूँ।

हे प्रभो ! वह मेरा दुष्कृत्य मिथ्या होवे, मैं पश्चाताप करता हूँ। हे प्रभु ! मैंने क्रोध,मान, माया, लोभ, हंसी, भय आदि के वशीभूत होकर असत्य भाषण किया हो, झूठ बोला हो, दूसरों को कष्टप्रद हों ऐसे मर्मभेदी वचन बोले हों, गाली तथा अपशब्द कहे हों, बुरा बोला हो, निंदा की हो, चुगली की हो, राग को बढ़ाने वाले कामवर्द्धक वचन बोले हों, कुचेष्टा की हो, आपस में बैर बढ़ाने वाले, फूट डालने वाले वचन कहे हों, असत्य खबर आदि पेपरों में दी हो, मिथ्या प्रचार किया हो तो वे मेरे सब दुष्कृत्य मिथ्या होवें, व्यर्थ में बकवास की हो, अनावश्यक एवं बहुत वाद-विवाद किया हो, उसके लिये मैं पश्चाताप करता हूँ।

हे प्रभु ! मैंने प्रमाद, लोभ आदि के वशीभूत हो बिना दिया हुआ द्रव्य, धन, वस्त्र, मकान आदि को लिया हो, जमीन आदि का हरण किया हो, कम मूल्य की वस्तु अधिक मूल्य में बेची हो, चोरी

किया माल खरीदा हो, राज्य के नियमों के विरुद्ध, सेलटेक्स (विक्रयकर) इन्कमटेक्स(आयकर) प्रोपर्टी टेक्स(सम्पत्तिकर) आदि का भुगतान नहीं किया हो, तेल, घी, चावल, गेहूँ आदि सामग्री में मिलावट किया हो, नाप-तौल करने में गड़बड़ी की हो, घूसखोरी अर्थात् रिश्वत द्वारा गलत कार्यों को सम्पन्न कराया हो, किया हो, करने वाले की अनुमोदना की हो तो मेरा वह दुष्कृत्य मिथ्या होवे, मैं पश्चाताप करता हूँ।

हे प्रभु ! मैंने काम इन्द्रिय, विषय वासनाओं के वशीभूत हो, अब्रह्म मैथुन कर्म किया हो, परस्त्री सेवन किया हो, वेश्या सेवन किया हो, स्वस्त्री को छोड़कर अथवा ब्रह्मचर्य आश्रम में, विद्यार्थी जीवन में रहते हुए अन्य महिला वर्ग में माँ, बहिन की दृष्टि छोड़कर अन्य काम विकार की दृष्टि से देखा हो, उनके मनोहर अंगों का निरीक्षण किया हो। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु एवं कर्ण इन पाँच इन्द्रियों के विषयों के सेवन में गृद्धता रखी हो, अश्लील हरकत की हो, पिक्चर देखी हो, कामवर्द्धक पुस्तकों का पठन किया हो। विकार ग्रस्त होकर अंगोपांग की प्रवृत्ति की हो तो प्रभु मैं अपनी निंदा करता हुआ आलोचना करता हूँ मेरा प्रभु यह दुष्कृत्य मिथ्या हो।

हे प्रभु! लोभ के वशीभूत हो मैंने सोना-चाँदी, मकान, जमीन, दुकान, गाय-भैंस, रुपया-पैसा, भोगोपभोग सामग्री आदि का संग्रह किया हो। जड़ पदार्थों को इकट्ठा करने की इच्छा रखी हो, धन के प्रति अति गृद्धता, लोलुपता, मूर्च्छा रखी हो, धन का न स्वयं उपयोग किया हो, न ही दूसरों को दान दिया हो, हमेशा जोड़-जोड़ कर धन रखा हो तथा परिग्रह संग्रह करने में जो भी पापकर्म किया हो वह सब दुष्कृत्य मिथ्या होवे, मैं पश्चाताप करता हूँ।

हे प्रभु! मैंने श्रावकों के करने योग्य आवश्यक कार्यों में प्रमाद किया हो, अनादर किया हो, उत्साह न रखा हो, रुचि न रखी हो, रात्रि में पूजन आदि सामग्री धोई हो, कुँए से जल खींचा हो, जिवानी डालने में प्रमाद किया हो, अहंकार के कारण पूजन करते हुए क्रोध किया हो, किसी को अपशब्द कहा हो, जल्दी-जल्दी बिना अर्थ एवं भाव के पूजा की हो, पूजा करते समय तथा अन्य धर्मादिक कार्यों को करते समय भावों में मलिनता आई हो, पूजन करते समय दूसरे से बात की हो तो वे सब पाप मिथ्या होवें। हे भगवान मैं पश्चाताप करता हूँ।

हे प्रभु ! मैंने स्वाध्याय आदि आवश्यक क्रियाओं में प्रमाद किया हो, जिनवाणी की विनय न की हो, संयम ग्रहण करने में भय किया हो, आलस्य किया हो, अव्रतों का सेवन किया हो। शरीर के वशीभूत होकर, मोह के कारण अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रस परित्याग, कायक्लेश आदि तप न किया हो। आहार दान, औषध दान, अभयदान उपकरण दान आदि दान देने में कृपणता की हो, मन मलीन किया हो तो वह सब मेरे दुष्कृत्य मिथ्या होवें, मैं पश्चाताप करता हूँ।

हे प्रभु ! मैंने चारित्र मोहनीय कर्मोदय के वशीभूत हो अथवा समीचीन पुरुषार्थ न कर पाने के कारण दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषधोपवास, सचित्तत्याग, रात्रिभुक्ति अथवा दिवामैथुन त्याग, ब्रह्मचर्य, आरम्भत्याग, परिग्रह त्याग, अनुमति त्याग एवं उद्दिष्ट त्याग इत्यादिश्रावकों की ग्यारह प्रतिमाओं को न स्वयं ग्रहण किया न दूसरों को करवाया और न ही पालन करने वाले त्यागी व्रतियों की अनुमोदना की, तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत्य मिथ्या होवे।

हे प्रभु ! पञ्च परमेष्ठी की शरण रूप दर्शन प्रतिमा, अहिंसा सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवं परिग्रह परिमाण रूप पाँच अणुव्रत, दिग्व्रत, देशव्रत एवं अनर्थदण्डविरति रूप तीन गुणव्रत, सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण एवं अतिथि संविभाग रूप चार शिक्षाव्रत इस प्रकार कुल 12 व्रत रूप व्रत प्रतिमा, त्रिकाल सामायिक रूप सामायिक प्रतिमा, पर्वों में उपवास रूप प्रोषधोपवास प्रतिमा, जीवदया पालन रूप सचित्त त्याग प्रतिमा, इन्द्रिय संयम एवं प्राणी संयम रूप दिवा मैथुन त्याग अथवा रात्रि भुक्ति त्याग प्रतिमा, ब्रह्मचर्य प्रतिमा, आरम्भ त्याग अथवा परिग्रह त्याग प्रतिमा, अनुमतित्याग प्रतिमा एवं उद्दिष्टत्याग प्रतिमा रूप ग्यारह प्रतिमाओं के पालन करने में मन वचन काय से प्रमाद पूर्वक, अज्ञानवश जो दोष लगे हों, वे सब मिथ्या होवे, मैं अपनी निन्दा करता हूँ आलोचना करता हूँ।

हे प्रभो ! शारीरिक मानसिक आदि समस्त दुःखों को नष्ट करने वाले मोक्ष प्राप्ति का साक्षात् कारण, बाह्य आभ्यन्तर परिग्रह से रहित निर्ग्रन्थ लिंग की मैं इच्छा करता हूँ। इसके सिवा कोई दूसरा मोक्षमार्ग नहीं है। यह केवली भगवान द्वारा कथित परिपूर्ण, समता रूप, माया मिथ्या निदान शल्य से रहित, शांति और क्षमा का मार्ग है। उस निर्ग्रन्थ लिंग से बढ़कर अन्य कोई मोक्ष का हेतु वर्तमान में नहीं है, भूतकाल में नहीं था और न ही भविष्यकाल में होगा। मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र से विरक्त होता हुआ मैं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र में श्रद्धान करता हूँ आचरण करता हूँ। मेरे द्वारा दिवस और रात्रि में जो कोई भी अतिचार, अनाचार हुए हो तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत्य समस्त पाप मिथ्या हो निष्फल होवे।

हे भगवन ! दैवसिक रात्रिक क्रियाओं में दुष्ट चिन्तन किया

हो, दुर्वचन कहे हो, मानसिक दुष्परिणाम किये हों, खोटे स्वप्न देखे हों, खोटा आचरण किया हो, जीवों की विराधना की हो, इसके सिवा अन्य उच्छ्वास में, खाँसी में, जंभाई में, पलक झपकाने में, हाथ-पैर के हिलाने में, सूक्ष्म अंगों के हलन-चलन में दृष्टि को चलायमान करने इत्यादि अशुभ क्रियाओं तथा सूत्रपाठ आदि क्रियाओं को विस्मरण किया हो, अन्यथा प्ररुपण किया हो, तत्सम्बन्धी मेरा दुष्कृत्य मिथ्या होवे।

हे भगवन् ! मैं प्रतिक्रमण में लगे अतिचारों की आलोचना करता हूँ। देश के, आसन के, स्थान के, काल के, मुद्रा के, कायोत्सर्ग के, नमस्कार के, विधि के, आवर्त आदि के आश्रय से प्रतिक्रमण में मन, वचन,काय से जो आसादना की गई हो, कराई गई हो, आश्रय करने वाले की अनुमोदना की गई हो तो प्रतिक्रमण सम्बन्धी मेरे पाप मिथ्या होवे।

हे प्रभो! मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय, मुझे बोधि की प्राप्ति हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो, जिनेन्द्र गुणों की सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो।

(कायोत्सर्ग करें)

समाधि भावना

दिनरात मेरे स्वामी मैं भावना ये भाऊं।
देहान्त के समय में तुमको न भूल जाऊं॥

शत्रु अगर कोई हों संतुष्ट उनको कर दूं।
समता का भाव धर कर सबसे क्षमा कराऊं॥

त्यागूं आहार पानी औषध विचार अवसर।
टूटे नियम न कोई दृढ़ता हृदय में लाऊं॥

जागें नहीं कषायें नहिं वेदना सतावे।
तुमसे ही लौ लगी हो दुर्ध्यान को भगाऊं॥

आतम स्वरूप अथवा आराधना विचारूं।
अरहंत सिद्ध साधू रटना यही लगाऊं॥

धर्मात्मा निकट हों चरचा धर्म सुनावें।
वे सावधान रक्खें गाफिल न होने पाऊं॥

जीने की हो न वाञ्छा मरने की हो न इच्छा।
परिवार मित्र जन से मैं मोह को हटाऊं॥

भोगे जो भोग पहले उनका न होवे सुमरन।
मैं राज्य सम्पदा या पद इन्द्र का न चाहूं॥

रत्नत्रय का पालन हो अंत में समाधि।
'शिवराम' प्रार्थना यह, जीवन सफल बनाऊँ॥